श्रीजवाहरवसन्तसाम्राज्यम्

प० जयरामशास्त्री साहित्याचार्यः

...तनियमानुसारेण ग्रन्थस्य सर्वोऽधिकारः ग्रन्थकर्तुरधीनः ।

अथ

श्रीजवाहरवसन्तसाम्राज्यम्

नाम

महाकाव्यम्

साहित्याचार्यश्रीपण्डितजयरामशास्त्रिप्रणीतम्

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपिवा ॥

कालिदासः

तदिदम्
प्रबन्धक रविबाबूप्रबन्धेन अर्जुनमुद्रणालये
श्रद्धानन्दबाजारे मुद्रितम्

प्रथमावृत्तौ
२००० प्रतिः

समर्पणम्

भारतीयों के प्राण, विदेशियों के सूर्य्य, शरणागों के आश्रयदाता, विद्वानों के आदरकर्ता, महात्मा गांधी के प्रमुख शिष्य, मन्त्रिमण्डल के अमूल्य रत्न, कूटनीतिके विरोधी, न्याय और सत्य के पालक, उपनिवेशों के रक्षक, विदेशों के उत्तरदाता, राजमण्डल के मान वर्धक, जिनके एक छत्र साम्राज्य में स्त्रियां भी गवर्नर पदपर आरूढ़ हैं, और हरिजन भी मन्त्रिमण्डल में विराजमान हैं, जिनका मुख-चन्द्र सदा प्रसादगुण से विराजमान रहताहै, जिन्होंने स्वतन्त्रता यज्ञ में सर्वस्व की आहुति दे डाली, उन अद्भुत चरित्रशाली श्री १०८ श्री जवाहरलालजी के करकमलों में ६० वीं वर्षगांठके शुभ उत्सव पर सन् १९५० ई० नवम्बर १३ तारका को

श्रद्धाभक्ति समेत

सादर

पत्र पुष्प की भेंट

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

भूमिका

आज समस्त भारतवर्ष में आनन्द ही आनन्द दिखलाई दे रहा है। राज प्रासादों पर त्रिवर्णी पताका लहरहा रही है। उद्यानों में नाना रङ्ग के विकसित पुष्प परितः सुगन्ध की दिव्य धारा बरसा रहे हैं। भारत की समस्त जातियों के हृदय-पटल पर समानता का अधिकार उनके हृदय की देशभक्ति के भाव को ऊंचा और दृढ़ बना रहा है। यद्यपि यह स्वतन्त्र भारत तीन वर्ष का शिशु है तथापि अच्छे २ मल्लों से समानता रखता है। इस बुद्धिमानी का फल यह है कि पार्श्ववर्ती प्रायः सभी उपनिवेश उसके सम्पर्क से अपने को सुरक्षित और कृतार्थ मानते हैं। देहली इसकी राजधानी है। यहां पर असेम्बली और कौंसिल दो सभायें राज्य-व्यवस्था करती हैं। यहां से अनेक देशों में राजदूत भेजे जाते हैं, और देश-देशान्तर के राजदूत यहां पर निवास करते हैं। इस समय राजधानी की छटा वीराङ्गना की तरह दिव्य रूप धारण किये हुये है। यह गौरव आज भारत को अर्ध शताब्दी के अनन्तर पुनः प्राप्त हुआ है। यह सांसारिक सुखों में सर्वोत्तम सुख है। हमारा सबका कर्त्तव्य है कि अतीत काल के समान इस गौरवदायी सुख को प्रमाद के कारण कर से न जाने दें। इस स्वतन्त्रता का सम्पूर्ण रूप से श्रेय महात्मा गान्धी को है। महात्मा गान्धी श्री कृष्ण भगवान् के अवतार थे। वे सत्य, तप, दया, त्याग और ज्ञान की पराकाष्ठा थे। यही उस दिव्य विभूति की गुणावली है जो स्वतन्त्रता जैसे मोक्ष से भी दुर्लभ अमृत फल को दिला सकी। जिस स्वतन्त्रता के लिये सन् १८५७ का सैनिक विद्रोह हुआ और लाखों की जानें समाप्त हुईं। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह और बुन्देले, रुहेले, हाडे अनेक क्षत्रिय वीर सदियों

लड़े पर सफल न हुये और जिन अंग्रेज़ों के साम्राज्य में सूर्य भगवान् अस्त नहीं होता था और जिन्होंने जर्मनी, जापान जैसी महाशक्तियों को ऐसा गिराया कि वे रसातलगामी हो गये, उन सर्वशक्ति सम्पन्न अंग्रेज़ों से बिना रक्तपात के देश को ले लेना और उनको देश से फूक मारकर उड़ा देना अवतार नहीं तो क्या है ? अवतार अपनी जीवनी में अनेक आश्चर्य्ययुक्त कार्य करता है परन्तु जिस महाकार्य्य को करके वह अन्तर्धान होता है, वह महाकार्य्य उसके प्राकट्य का आदिकारण माना जाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर केवल तदेक हेतु प्रादुर्भूत महात्मा गान्धी का अन्तर्धान होना अनिवार्य था। अतः वे सहसा मुक्तिधाम को गये। जिस स्वतन्त्रता-वल्ली को महात्मा गान्धी ने लगाया, महात्मा गान्धी उस स्वतन्त्रता-वल्ली के बीज थे। किसी भी पौदे को देखिये जब तक बीज नष्ट नहीं हो जाता पौदा नहीं लहलहाता। अतः महात्मा गान्धी ने उस बेल को अपने रागद्वेषादि दोषशून्य अमृतमय रक्त से सींचकर अजर अमर किया। यहदेश के लिये बड़े हर्ष की बात है। संस्कृत के विद्वानों के लिये यह पुनः स्वर्ण युग उपस्थित है। वे अपनी शक्ति के अनुसार पुनः ग्रन्थों का निर्माण करना प्रारम्भ करें, और नेताओं के गुणगान से अपनी कृतज्ञता प्रकट करें। यदि वे प्राचीन भव्य ग्रन्थों को देखकर विमुग्ध हो गये और कलम न उठा सके तो इस सौभाग्य के अवसर को हाथ से खो देंगे और धृतिमान् तथा विचारशील नहीं कहलायेंगे।

इसी कारण हमने अपनी सर्व प्रकार की अयोग्यता का अनुभव करते हुये भी इस "श्री जवाहर वसन्त साम्राज्यम्" नामक काव्य की रचना की है। यह सर्वथा हमारी धृष्टता है। आशा है अन्य विद्वान् भी अपनी मुख मुद्रा को खोलेंगे और परस्पर प्रेमोत्पादक अमृत बरसायेंगे। जो विद्वान् अपने ज्ञान गौरव से देश में दल बना गये वे विद्वान् अवश्य थे परन्तु दूरदर्शी नहीं थे। क्योंकि पार्टीबाजी देश की संघशक्ति के लिये

घातक सिद्ध हुई है। अढ़ाई हज़ार वर्ष पहले देश में जब जैन, बौद्ध, वैदिक तीन मार्गों में विभक्त भारतीयों को देखा तो यूनान के ग्रेट सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण बोल ही दिया। महात्मा गान्धी उन महापुरुषों में शिरोमणि हैं जो देश को एकता के दृढ़ सूत्र में बांधते हैं।

देश का पराधीन होना महापापों का मूल है। देश की पराधीनता में देश का सर्व प्रकार का ऐश्वर्य अन्य के हाथों में चला जाता है। वह किसी प्रकार भी उसका उपयोग करे। कौन क्या कह सकता है। हमारे देश की सबसे बड़ी विभूति उसका अनादि ज्ञान है, जो वेद के नाम से प्रसिद्ध है। गुरु अरस्तू का प्रबोधित ग्रेट सिकन्दर सबसे पहले पश्चिम में इसी रत्न राशि को ले गया। फिर क्या था यूनान से टर्की, टर्की से जर्मनी, जर्मनी से वर्तानियां, वर्तानियां से अमेरिका, सारे संसार में भारत की ज्ञान ज्योति फैल गई। इससे प्रथम वेद शास्त्र भारत से बाहर नहीं गये थे। क्योंकि देश स्वतन्त्र था। आज से साढ़े चार हज़ार वर्ष पुराना अरबी भाषा का प्रसिद्ध "अबतूल अबकूल" नामक ग्रन्थ में विन ग्रन्थकार लिखता है कि 'संसार की ज्ञान ज्योति सबसे प्रथम चार वेद रूप में भारत में ईश्वर ने प्रकट की। उसके ज्ञान के लिये सब को भारत जाना चाहिये।" इस लेख से ऊपर लिखित वार्ता सिद्ध होती है। अजमेर के छपे हुये सब्राह्मण चारों वेद ५) रु० में आते हैं, और जर्मनी के छपे हुये छः सौ रु० में आते हैं। बम्बई की छपी हुई मनुस्मृति २) रु० में आती है और फ्रांस की छपी हुई २५) रु० में आती है। इस प्रकार से विदेशियों ने शास्त्रों से अनन्त लाभ उठाया। अब जब हमारा भारत स्वतन्त्र है तो अन्य वस्तुओं की तरह वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थ भी राष्ट्र सम्पत्ति होने चाहिये और इनकी यत्र तत्र छपने की स्वतन्त्रता भी व्याहत होनी चाहिये। और गवर्नमेंट की ओर से इनका यहां दिव्य संस्करण होना चाहिये। जिससे समस्त संसार भारत को ईश्वरीय ज्ञान के प्रादुर्भाव का पवित्र आदिस्रोत समझकर उसका

गौरव करे। हमने इस ग्रन्थ में वर्तमान समय की बहुत-सी बातों पर प्रकाश डाला है। आशा है पाठक उससे लाभ उठावेंगे। पुस्तक को पढ़कर अपने विचारों से हमें अनुगृहीत करेंगे।

५. १. ५१

विदुषांवशवदः

पं० जयराम शास्त्री साहित्याचार्य
पहाड़ी धीरज सदर बाजार
दिल्ली।

जिन श्रीमानों ने अतीत आपत्काल में मुझे सहायता प्रदान की है उन श्रीमानों को कृतज्ञता प्रकटनार्थ उनका स्मरण करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः धन्यवाद प्रदानपूर्वक देश के सूर्यस्वरूप श्रीमानों की नामावली नीचे दी जाती है।

१. श्रीमान् नेपाल सम्राट् राजाधिराज श्री त्रिभुवन वीर विक्रमशाह जी साहब बहादुर नई दिल्ली।

२. श्रीमान् करनैल साहब श्री करणीसिंह जी साहब बहादुर महाराज बीकानेर।

३. श्रीमान् रायबहादुर श्री गूजरमल जी मोदी मोदीनगर।

४. श्रीमान् रायबहादुर दानी मानी सेठ श्री चुन्नीलाल जी जैपुरिया साही कटरा दिल्ली।

५. श्रीमान् रायबहादुर लाला श्री जोधराज जी साहब हेली रोड नं० १२ न्यू दिल्ली।

६. श्रीमान् लाला सर शंकरलाल जी साहब बहादुर क्लौथ मिल्स दिल्ली।

७. श्रीमान् प्रसिद्ध दानी श्री लाला जगन्नाथ जी साहब सब्जी मण्डी।

८. श्रीमान् कृष्णबोधाश्रम जी महाराज धर्मसंघ दिल्ली।

९. त्यागमूर्ति पं० गणेशदत्त जी गोस्वामी बिड़ला मन्दिर दिल्ली।

१०. पं० छज्जूराम जी शास्त्री विद्यासागर दिल्ली।

११. आयुर्वेदाचार्य प० जगदीशप्रसाद जी शास्त्री किनारी बाज़ार दिल्ली।

१२. दैवज्ञ शिरोमणि पं० जगदीशप्रसाद जी मंत्र शास्त्री पहाड़ी धीरज दिल्ली।

१३. पं० कन्हैयालाल जी शास्त्री व्याकरणतीर्थ एस० डी० कालेज कानपुर।

१४. पं० गजानन जी गौड़ धर्म शास्त्री शंकर कुटी कानपुर।

१५. पं० पद्मानन्द जी शास्त्री एम० ए० संस्कृत प्रधानाध्यापक कालेज चूरु।

१६. पं० हरिराम जी शर्मा पोस्ट मास्टर रत्नगढ़।

१७. पं० बदरीप्रसाद जी एम० ए० जज, कोर्ट बीकानेर।

१८. पं० लक्ष्मीनारायण जी बी० ए० एल० एल० बी० एडवोकेट कोर्ट बीकानेर।

१९. स्वामी केवलराम जी साधु रामद्वारा बीकानेर।

२०. श्री पं० श्रीदत्त जी रायबहादुर काली कमली वाला आश्रम हरद्वार।

२१. श्रीमान् चौधरी रत्नसिंह जी साहब एम० ए० कर्नल छावनी मेरठ।

२२. श्रीमान् चौधरी दरियावसिंह जी बी० ए० रिकरूटिंग अफसर रोहतक।

२३. श्रीमान् लाला ओंप्रकाश जी साहब ठेकेदार डिप्टी गंज दिल्ली।

२४. श्रीमान् बाबू हेमचन्द्र जी जैन पहाड़ी धीरज दिल्ली।

२५. श्रीमान् बाबू प्रकाशचन्द जी जैन डिप्टी गंज दिल्ली।

२६. श्रीमान् बाबू सुन्दरलाल जी जैन बीड़ी वाले डिप्टी गंज दिल्ली।

२७. श्रीमान् बाबू विमलदास जी जैन।

२८. श्रीमान् पं० श्रीराम जी शर्मा प्रधान जिला कांग्रेस कमेटी रोहतक।

२९. श्रीमान् प० रामफूलसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० वकील रोहतक।

३०. श्रीमान् रायबहादुर साहब बाबू मोहनराय जी बी० ए० अध्यक्ष मैदा मिल्स आदि सहारनपुर यू० पी०।

३१. श्रीमान् बाबू परमात्माशरण जी बी० ए० अध्यक्ष समर्थ एण्ड को० सदर बाजार दिल्ली।

PREFACE पस्पशा

I have carefully gone through the "Sri Jwahar Vasant Samrajyam" A peotry book. There are seven chpaters in the book containing about 400 slokas in all. The book has been written with new ideas under new surroundings. The book has been most efficiently prepared and is very interesting and instructive. Like that of 'Kirata and' 'Magha' the language is of a very high standard.

AUTHORS INTRODUCTION:— The author of the book is Pandit Jai Ram Shastri Sahityacharya of village Gochhi Distt. Rohtak East Punjab.

Pt. Jai Ram always secured I class First position in order of Merit in all the Sanskrit examinations of the University of the Punjab. He was a student of the Oriental College Lahore and had the good fortune of learning from such eminent Sanskrit scholars as the late A.C. Woolner M.A. Principal Oriental College Lahore and Vice-Chancellor of the University of the Punjab, and Mahamahopadhyaya Pt. Shive Datta Dadhich head pandit Oriental College Lahore.

After his brilliant academic career at Lahore Pandit ji worked as head Sanskrit professor in Dungar college Bikaner, under Sri Sampurana Nand Varma; M.sc, the present education Minister U. P. Government the then principal of the Dungar college Bikaner. Pandit ji had national inclinations from the very beginning and the book under review is the natural outcome of those very feelings of patriotism and Nationalism. Several other work of similar nature by the author await publication. Sri Gandhi kalpdruma amongst those will be the Master piece, Pandit ji is a profound Scholar of Sanskrit over sixty years of age.

The Book deals with 'Vasanta' the most cherished and awaited season of all, called 'Madhava' in sanskrit. Madhava is at the same time one of the many names of the Lord Sri Krishna. Further splitting the whole word Madhava into the two syllables Ma and Dhava the term means Bapuji i.e. Sri Mohan Das Karm Chand Gandhi', Ma meaning mother and Dhava meaning husband,hence the mother's husband. Thus the book has become though difficult in places giving three constructions in place of one. Yet will be found interesting by all the three, (1) Lovers of Gods (2) Lovers of (spring) (3) Lovers of pleasures politics.

Reviewing the book chapter by chapter the reader will notice that the first chapter naturally opens with the advent of 'Vasanta' while the second one is replete with the detailed description of various trees. The idea is that just as Sri Vishnu incarnated himself in the form of Sri Krishna while the other gods and goddesses assumed the form of Gops and Gopis to keep company with Lord Sri Krishna similarly here Sri Vishnu assumed the form of Gandhi and Vasanta while the Gods and Goddesses again assumed the dual form of company state men and diplomats as well as many trees and flowers. The point worth noticing in this metamorphosis is that some of the Gods and Godesses though under went a change in their forms yet stuck to their old popular names—

As Indra (इन्द्र) Rambha (रम्भा) Shava (शिवा) Varuna (वरुण) Vidura (विदुर) Etc.

The third one is specially devoted to 'Karira Varanana'. Karira (Kaira grows only in Brij Bhoomi, the

land of Romance of Bal Sri Krishna. It should specially be borne in mind that this small flimsy tree has not been attended to by any of the sanskrit poets in any of their works. But with the acquisition of "Sarva Satta Sampanna Swatantra Praja Tantra" the fruit of the Penance of Mahatama Gandhi and his team of selfless workers, even this ever neglected tree can no longer be ignored in this age of Republican Democracy and it is but proper that the poet should have thought of it first of all, starting form the lowest to the highest in vegetable kingdom.

The fourth chapter describes the 'Malayachal Vayu' considered to be the most fragrant and refreshing, as well as of seperation and the separated. The fifth one sings the sweet song of Bhramari, the poetic devotee of love. In the sixth the theme is of love songs. The last one penetrates into the relative and comparative appreciation and adpraisal of there wents ? the softer sex of foreign countries. The comparision and contract of the members of this sex in Europe and Africa have been most profoundly and profusely brought out.

SRINGARRASA automatically crop up being associated separately with VASANTA.

A close and careful study of the entire subject matter of the book will richly repay for the pains taken. Acursory description however of some of the slokas is given here as a specimen to create a hankering for digging deep into the book amongst the real lovers of poetry.

(A) Devoted to Mahatma Gandhi.

स्वकर्मचन्द्रेण विकास मीयुषा
पदे पदे संसृज्ताऽथविभ्रमान् ।।
स्वतन्त्रता सौरभ हर्ष वर्षण:
सतां नितान्तं मधुरेष मोहन: ।। सर्ग १. श्लोक ३.

Summary. Just as with the advent of spring the entire nature comes into a sort of new life the same way with the advent of Mahatama GANDHI the entire Bharat Varsha enjoyed the fragrance of independence.

दिव्यं पत्रचयं विभर्तिखलु यः सर्वर्तु रम्य: फलैः
नित्यं पक्षधरैः सकुन्तनिवहैः संसेव्यते यः परैः ॥
दत्ते मानसवाञ्छितं तनुभृतां विभ्रंशछविं नन्दने
सोऽयं राजति राज्ञराजमहितः श्रीगान्धिकल्पद्रुमः ॥
सर्ग २ श्लोक ६४

Summary. Just as the Kalpadruma (the proverbial all-desires granting tree beautifully shining in (India's)Nandan BAN fulfils all the wishes of the people similarly SRI GANDHI KALPADRUMA radiating lustre in LAN-DAN (LONDON) grants all the desires of the people.

पुन्नाग माहुः समरेऽमरास्त्वां
निगद्यसे शान्तिधनैः शमी त्वम् ॥
तथाऽपि विज्ञाः फलनात्फलानां
त्वां गान्धि ! कल्पद्रुम मामनन्ति ॥ सर्ग २. श्लोक ६५.

Summary : O GANDHI. In the battlefield Gods call thee **पुन्नाग** (the greatest hero amongst heroes) also **केशर** (SAFFRON). By the Peace-loving people of the world

thou hast been called शमी (the fountain head of peace) also शमी a special tree जान्ती (JANTI) offered in the sacrifice of independance as thou actually wast.

But the statesmen on account of the acquision of celetial fruit of independence honour thee as the कल्पद्रुम (KALPADRUMA).

This connotes the highest form of Sanskrit Poetry.

अपूर्णराज्यस्थिति रेव नन्दनं
किमीयिनान्भारतनन्दनेश्वर ! ॥
कस्तूरिकामोदभृताऽपि दुःखिनी
त्वया विना भूमिरियं सनन्दना ॥६६॥

Summary : O Lord of Bharat *NANDAN* (INDRA'S GARDEN), why did thou migrate to NANDAN (INDRA'S HEAVEN) when the administration of the country (under the New regime) was yet incomplete ? This land (of Bharat) together with NANDAN (—LONDON signifying Commonwealth), though full of fragrance flowing from your and mother Kastooraba's (Musk deer) glory is in affliction without thee.

The poet bewails Mahatama Gandhi's death asking him why leaving two Nandans (Bharat Nandan and LONDON) he had gave to the third NANDAN (INDRA'S NANDAN or HEAVEN).

विकासभाञ्जि स्वरुचा सुराणा-
मुद्यानपुष्पाणि विवर्णयन्ती ॥
नायादियं मे खलु कौतुकाया-
ऽतिभव्यकाया जगदीशमाया ॥६७॥

Summary: Here again the Poet mourns Mahatama Gandhi's death:—This strange DIVINE Maya (ILLUSION) which changes the aspect of even the fully blossomed celetial flowers with its own glory does not please me.

The idea is why GOD having just raised the Mahatama to the pinnacle of his glory removed him from that eminence so soon.

(B) **Devoted to Sri Jawahar Lal.**

गांधीवरं पूजयिता च भारतीं
स्वराज्यलाभेन विनोदिताखिलः ॥
स्वजन्मना सौख्यकरो द्विजन्मनां
विराजते ज्वाहरलाल माधवः ॥४॥ प्रथमः सर्गः

Snmmary: SRI JAWAHAR LAL VASANT (SPRING) personified, who is the admirei of SRI GANDHI, Bharat (गां LAND) and the learned (धीवर). who further has pleased all by the acquision of (स्वराज्य) self government and by his birth the given of happiness to Bharat people, may (he) ever shine.

इयं विमानैरपि भूरिमानै-
र्विराजमानै रपि राजमानै : ॥
विभाति वेला रमणीयपद्मै :
पद्मै र्यथा ज्वाहरलालकीर्ति : ॥ सर्गः ५. श्लोक ८.

Summary: वेला (Bela) this vasant season is shining with beautiful lotus flowers as illustriously as the fame of Jawahar Lal with numberless aeroplanes beaming all round.

इमा गुरुं गामपि लाल ! भूमणे !
त्वयि ! स्वशक्त्या महिषीं वितन्वति ॥
विराजमाने कलिमारके त्वयि
निवास मीयात्क्व कलिद्रुमावलिः ॥ २. २५॥

Summary: O (LAL, लाल) Ruby ! O Bharat Diamond, you have brought this vast land of Bharat with your own might under your control and you have uprooted all evils under there conditions (How can where will) the Kali-drums (a kind of trees) find shelter for themselves ? i.e. evils faces will not be allowed to raise their heads).

The Poet's flight of thought can also be construed in light of the double meaning of the words (गाँ—cow and earth, महिषीं—buffalow and the most favourite queen) you with your might have converted (Mahatma Gandhi's) cow into a buffalow i.e. done the impossible.

This will be further continued in the following sloka.

न मन्यतां नाम यदत्र केनचि-
द्रघो र्महिष्यां यदलेख्यजोद्भवः ॥
इदं मदुक्तं सुतुषारसारभं
समक्षमदृणो रयि ! लोक ! लोकय ॥ २. २६ ॥

Summary: The great Poet Kalidas Shakespeare of India, in his book 'Raghuvansa' says that अज Aja (fallen of Dasaratha) was born of the most favourite Queen महिषी of Raghu. Or Aja-goat was born of महिषीं—buffallow] may not be believed as a event of part, but what I say is as

white as immaculate snow being before your very eyes, O people ! Look to it.

This is कवि प्रौढौक्तिवाद,

अयं मासः पूज्यः कुसुम चय चर्च्या तिथिरियं
यदस्मिँस्त्वं भूमिं गरयसि गृहीत्वा निजजनुः ॥
विचित्रोजातस्त्वं नयनततिर्पातोऽपियुवकैः
कटाक्षै र्वामानां मसितसितरक्तैः शवलितः ॥ ४. ५० ॥

Summary : This (November month is worthy of worship and (this 14th) date is worth a shower of flowers in which you having taken your birth have made (Bharat) land great. Drunk deep पीत : (drunk as well as yellow) by the young men, you have been into wonderfully variegated colours (from yellow) glanced at as Kance by the white black and red eyes of the beautiful maidens.

शचीरूपां सिंहीप्रतिभटगुणाल्लीभृततनू-
मिमां लक्ष्मींलब्ध्वा विबुधसदसि त्वं वरतरः ॥
यशोविन्दन्भिन्दन्नरिमवनिभोगाननुभव-
न्प्रसिद्धिं प्राप्तासि प्रथितबलहारी हरिरिव ॥ २. ५१. ॥

Summary ; Your (Good self) presiding over this council of Gods, winning glory, vanquishing enemies, enjoying worldly pleasures, will acquire world wide eminent fame like most powerful, killer of bal, Hari [हरी (*i*) Indra, (*ii*) Lion, (*iii*) Vishnu] having obtained this Bharat Lakshmi (Samratya) resembling (*i*) Indrani (*ii*) Lioness (*iii*) Sri Lakshmi (Vishnu concert)

N.B. Wonderful flight of imagination indeed.

The book is replete with such flights of imagination of which the above ones specially are but a few ?

(C) Associated with Sri Sardar Vallabha Bhai Patel

भ्रमेण कष्टेषु शरीरधारिणा
पिष्टोऽपि रात्येव सुवासचन्द्रभाम् ॥
असौ वसन्तो भरतावनीं जयन्
पपाट पाटीरपटेल-पाटवम् ॥

Summary : Just as chandan gives (Flavour fragrance) even to its own oppressor (Grinder) and flower emits fragrance (Sweet smell) to its own plucker the (Bhramar) ————. Sardar Patel making all allowance even to the mischief mongers has kept this land of Bharat under firm control.

———

D. Associated with Sri Chakravarti Rajagopalacharya and Sri Rajindra Prasad

वसन्तमासेमधुरेऽपि रायसी
सतीवरेजे विशदाम्बरप्रभा ॥
शरद्घनाम्भोधरभाविडम्बिभि
रसेम्बलीचेम्बरमेम्बराम्बरैः ॥४५॥ सर्ग ४.

Summary : Raisi (Raisina Delhi) with immaculate white garments on is radiating lustre even in sweet spring month like a faithfully devoted wife on account of the (white) dress of the members of Assembly Chamber lying in their whiteness with the serene splendour of the autumn white clouds.

The English words Assembly, Chamber, member, the last two alliterating with the sanskrit word अम्बर have

beautifully enhanced the rhyme and anthem of poetry. Here is a commendable effort on the part of the author to assimilate foreign words in order to enrich the already rich sanskrit language.

कृतादरा लण्डनराजमण्डलैः
स्वमुद्रिकासप्तसमुद्रमुद्रिणी ॥
वसूनि सूते विशदानि दानिनी
गवर्नराधिष्ठितरायसीवृषी ॥

Summary : The royal throne of (Raisi) Delhi, adorned by the President, honoured by the London Royal Cabinet, spreading its own currency over seven seas and diffusing its charity, is procreating fabulous wealth.

In addition to these the book also deals with individual countries and places Bharat, Ang, Bang, bangar, jungle and Bikaner Marwar, Kashmir, Lanka etc. Out of foreign countries the following have been specially mentioned, America, Africa, Russia, Turkey, Germany, China etc. England (London) all these have considerably contributed towards the enhancement in beauty of the book.

This book is unique in this respect and has stolen a march as if over all sanskrit works of the ancient. This was but natural in this age of rapid progress when up to date means of communications and transport are so easily handy and vast distances have been shortened with modern machinery and appliances. International intercourse and foreign relations have further imparted an impetus to intercontinental connections and contacts, Press, platform publicity and propaganda have played no mean part to

bring together even the diametrically distant districts and divisions and the earth has shrunk to its minimum under this pressure, although the poet has differently described the peoples of various countries in light of their caste, creed, colour, culture and cut and inview of their modes of life....yet he makes no difference whatsoever between one human being and another. He is deadly against communal, (जाति) sectarian and parochial divisions that have recently rather unfortunately cropped up in this ancient land of Bharat.

On this theme the following three slokas may with advantage be studied, they are like shining stars in the galaxy of (poetic) heaven.

जातित्वमात्रेण विकासमिच्छतां
न च द्विजानामपि मानवर्धनः ॥
समानभावः करुणाकरो नृणा-
ममीवसन्तः खलु गान्धिसम्मतः ॥५॥ सर्ग १.

Summery:—This spring season sanctified (sanctioned) by Mahatma Gandhi naturally offers equality rights, and compassion to all men and in no respects for even such brahmans as are anxious to assert superiority for based solely on birth with motives of self-aggrandisement.

Note. The emphasis on जाति [Jati] the opening word of the sloka. It may be noted that जाति मालति jati or malati is aspicies of flower and that is the one and only one flower that does not blossom in spring. (न स्यात् जाति वँसन्ते न स्याज्जाति वँसन्ते) Such is the diction of all poets.

Further the sloka establishes by experience from nature that the beauty again life in the world having a double mean-

ing 1. brahman and 2. bird. The sense is now can vasant add to the joy of such birds as are in search jatis only.करुणाकर करुण poets. सुमनां मालतिर्जाति इत्यमरकोश:

आकरAlso, has doubble meaning. 1. Compassionate 2. is a tree and is a mine. करुण Tree blossom only in spring. That is why, spring is also designated as करुणाकर

धर्मेऽपि लाल सचिवैर्निज दिव्यजल्पैः
सौरभ्य साम्यकुसुमैर्जनिते वसन्ते ॥
नित्या अपि क्षणिकता मुपसेदिवांसो-
मम्लुर्नितान्ततनव: सखि ! जातिवादा: ॥४८॥ सर्ग ४.

Summery;—To introduce the saidfact one Sakhi, addressing to another Sakhi to refute jativada communality O Sakhi, on spring of having sprung up even in summer on account of the communality. Fragrance of (samyavad) democratic flowers blossoming from sweet celetial speeches of sri. Lal prime minister's only imagination, communalism. even firm in its Roots having been reduced to mere skeleton in no time having totally faded.

This sloka is a continuity of the previous one and the note above may be great help.

रत्नेषु धातुषु खगेषु पशुव्रजेषु
पुष्पेषु काव्यनिवहेषु च वर्णभूमा ॥
आर्य्यैं र्व्यलोकि निखिले हरिवर्षदेशे
कापीक्षितो न पुनरत्र स मानवेषु ॥१६॥ सर्ग ७.

Summary;—वर्ण has triple meanings 1. Colour 2. Letters 3. Jati community. The richness variety plurality of वर्ण was [observed marked] by the aryans incereals, minerals, birds, beasts, flowers and poetry throughout हरिवर्षदेश Europe but

nowhere was it observed amongst men. The sense is that there is no distinction of caste व्यवस्था in Europe on Patriotism

न्यूयार्क मर्करुचिमेतु अमेरिकायां
तल्लन्दनं व्रजतु नन्दनतां युरोपे ॥
न्यूयार्कलक्षनवनन्दनप्रौढमाता
विश्वम्भरा जयति भारत कालिकाता ॥ १५ ॥ सर्ग ७.

Summary:—Let New York in America rise to sun splendour, let the world known London grow to Nandan [Jndra's garden] glory. But Bharat Kalicut [Calcutta]. The young mother procreator of million of New York and innumerable London like progeny and the feeder of the universe is all in all for us.

Note—This true patriotism of the poet is really worth commendation and acceptance [acknowledgement] Yet the poet in no way ignores the good points of foreign countries likely to teach a good lesson to Bharat as will be borne out by the sloka following :—

एकैव राजति सदा न परा कदापि
यूनां यदेणनयना हरिवर्षजानाम् ॥
तन्नीतिरत्न मथ भारतवासि शिक्षा-
पाठावलीवलयितोपनिषन्निवन्धः ॥१७॥ सर्ग ७.

Summary:—Amongst European youngmen there shine only one gazellaeyed wife and never more. This is the most precious jewel of their National policy and for Bharat is full of as if instructive Upnishad Texts.

Avails himself of the race opportunity to convey his messages to the Bharties. The poet while

bidding good bye to vasant on its departure from Bharat for foreign country in foreign embassies, but after conveying his messages only to Russian & Chinese Embassies stops shop stall at once and thus the present complete looking book is really incomplete. The sudden break is most regretable specially at this stage when Bharat is universally expanding by extablishing embassies and diplomatic relations in almost all foreign countries. The poet's massages woula have rendered a youngman's service in this direction of expasion. The book too would have assumed a vaster form and the readers too would have been spared. The sudden disappointment they would under the circumstances face. Undoubtedly some thing untoward must have intervended to force the poet to this break off.
Herewith follow the two slokas:—

चीनं सखे ! प्रियवसन्त ! गमिष्यसि त्वं
तत्रस्थितः पाणिकरो त्रिदुषां वरेण्यः ।।
तस्मै त्वया निगदता भरतेतिवृत्तं
शार्दूलभूपमरणं न कदापि वाच्यम् ।। ४२ सर्ग ७ ।।

Summary:—O dear friend vasant thou shalt go to China. There resides Sri Panikar. The most learnedamongst the learned as India's Rajdoot, in India's embassay. While conveying to him the other news from India, the sad news of the demise of late his highness Maharaja Sri Sardool Singh ji of Bikaner is never to be conveyed to him.

This reference is to the fact that Sri Panikar ji was the Prime Minister of Bikaner and naturally he would feel grieved to hear of the demise of Sri Sardool Singh ji.

रूसं विलोकय सखे ! विजयादिमूर्ति-

लक्ष्मीप्रभा-पटल-भारत-भासमानम् ।।

स्वस्रे दिशेः परिचयाय कुह्वाप्यलभ्या-

न्काश्मीर केशर, सुमानस-दिव्य-पद्मान् ।।४३।। (सर्ग ७)

Summary:—O friend, visit Russia also, there dwelleth Sri Vijaya laxmi ji in Indian embassy who is the Prime cause of Bharat Independence and whose grandeur lends to Russia the same splendour as Bharat is enjoying for your introduction present to Bharat sister the (केशर) Saffron from Kashmir and celetial lotus flowers of beautiful Mansrover, no where else available.

NOTE—Kashmir saffron and Mansrover lotus have a lavour and grandeur of their own.

आशीर्वादः—

द्विरेफततिलीलया युवकमण्डलीमण्डिते

विचित्ररमणीजनैर्जनितवल्लरीविभ्रमे ॥

स्वतन्त्रभरतेऽधुना निखिलकामनापूरकं

जनस्य निजशासनं प्रतिदिनं वसन्तोत्सवः ॥४५॥ सर्ग ७.

Summary:—The congregation of youngmen are as if the swarms of—and the wonderfully beautiful maiden are the creepers in blossom in the people's own Government in today's Independent India, the fulfiller of each and every one's Desires is for all times Vasant Festival.

With these lines the Poet concludes his book.

CONCLUSION: The book has been most elegantly conceived of. The poetry is of a very high order and the language is sublime. Such production have been most rare after the close of

the 12th century in chronising with the down fall of India in 1193 A.D. Vide नैषधीय चरितं.

It is hoped that in independent India the ancient learning of sanskrit will be rapidly revived and every Indian would do his level best to create in himself a desire for the study of Sanskrit.

Here is an invitation for Sanskrit Scholars to translate and comment upon this book of course with the Author's permission, in Sanskrit, English and Hindi for students in the University. The Government too may see its way to recommend this book for adoption as text book in degree and port graduate classes in all the Indian Universities. The book will in justice fit in the courses for Shastri in the Panjab University and for Kavyatirtha in the Culcutta University and for Sahitya Acharia in the Benares University.

N.B. The Misprint in this edition will be corrected in the next.

GYANI RAM

Ret. Prof.
Sri Partap College
SRI NAGAR (Kashmir)

Telewara,
DELHI
31/11/1950.

अथ

श्री ज्वाहर वसन्त साम्राज्यम्

नाम

महा काव्यम्

॥ प्रथमः सर्गः ॥

०—) श्रीमाधवोजयति (—०

शिलीमुखौघै रधिपद्म मात्मव-
त्कृताः सकामा अपियेन साधवः ॥
वियोगिनांध्येयपरायणात्मनां
मनाँसि पुष्याद्भगवान्स माधवः ॥१॥

विशुद्धनानागमचिन्तिचेतसां
कृते द्विजानां करुणार्णवोनवः ॥
विशेषलक्ष्मीरुचिरः सुरार्चितो
वसन्तकालो भगवानिवागतः ॥२॥

स्वकर्मचन्द्रेण विकास मीयुषा
पदे पदे संसृजताऽथ विभ्रमान् ॥
स्वतन्त्रता-सौरभ-हर्ष वर्षणः
सतां नितान्तं मधुरेष मोहनः ॥३॥

गांधीवरं पूजयिता च भारतीं
स्वराज्यलाभेन विनोदिताखिलः ॥
स्वजन्मना सौख्यकरो द्विजन्मनां
विराजते ज्वाहरलाल माधवः ॥४॥

---

२ एष मधुः वसन्तः सतां सज्जनानां नितान्तं मोहनः मोहनकारी । तथा महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी । केन विकास मीयुषा विकासं प्राप्तवता तथा पदे पदे विभ्रमान् सुखानि, पक्षिणा भ्रमांश्च संसृजता कुर्वता स्वकर्मचन्द्रेण । अन्यत् समानम् । ॥३॥

१ ज्वाहरलाल एव माधवः वसन्तः विराजते शोभते । भारतीं गां भारतभूमिं धीवरं विद्वांसं च पूजयिता मानयिता । ज्वाहरलालोऽपि गान्धीवरं गान्धीश्रेष्ठं पूजयिता । द्विजन्मनां पक्षिणामपि । ॥४॥

जातित्वमात्रेण विकासमिच्छतां
न च द्विजानामपि मानवर्धनः ॥
समानभावः करूणाकरो नृणा—
मसौ वसन्तः खलु गान्धिसंमतः ॥५॥

भ्रमेण कष्टेषु शरीरधारिणा
पिष्टोऽपि रात्येव सुवासचन्द्रभाम् ॥
असौ वसन्तो भरतावनीं जयन्
पपाठ पाटीरपटेल-पाटवम् ॥६॥

---

१ असौ वसन्तः जातित्वमात्रेण विकासमुन्नतिमिच्छतां कामयमाननाँ द्विजानामपि मान वर्धनो नास्ति । मालतिं दृष्टवव् विकास मिच्छताँ पक्षिणाँ मोदप्रदो नास्ति । यतः नस्याज्ञातिर्वसन्ते,, इत्युक्तेः । गान्धिरपि ईदृशः । अतः वसन्तः गान्धिसंमतः ! करूणाकरः कृपालुः, वृत्ता अपि करुणा। :— ॥५॥

असौ वसन्तः भरतावनीं भरतभूमि जयन् जेतुमिच्छुः पाटीर-पटेल-पाटवं चन्दनस्तम्भ तुल्यस्य सरदार वल्लवभाई पटेलस्य पाटवं चातुरीं पपाठ पठितवान् । कथमिति तत्राह—शरीरधारिणा जनेन कष्टेषु पिष्टोऽपि दुःखितोऽपि तस्मै सुवास मेव ददाति । वसन्तोऽपि शरी शर वृत्तवान् । तथा रधारिणारकारधारिणा भ्रमेण भ्रमरेण पिष्टोऽपि सुवासमेव ददाति । सुगममन्यत् ॥६॥

स्फुरत्सितस्फारितकञ्चुकावृतं
समुच्छ्वशद्भोगविलासमण्डलम् ॥
चिराय हृद्यागमभाष्यदर्शनै-
रशेषयन्तं भुवि शेषवैभवम् ॥७॥

वनेऽपि गेहेऽपिरसालवासिनां
सुखिद्विजानां निकरै र्मुहुर्मुहुः ॥
फलावलीभ्यः सुहितै रुतैः कलै
श्चलैरुपश्लोकितकीर्तिगौरवम् ॥८॥

अपत्रपत्वं द्विजराजयोषिता
मवेद्यमाघन्मधुपौघकर्तृकम् ॥
प्रशास्तं कामलदण्डमण्डलै-
रखण्ड्यसच्छासनवज्रधारिणम् ॥९॥

दृशा द्विषः पञ्चशरत्वमोचिनं
सखाय मुत्कायममोघपातया ॥
पुनः सृजन्तं शितवाणकोटिभिः
सखि-प्रिया-शोधितशोक-हृज्जलम् ॥१०॥

भणन्ति पार्णर्णकणापर्णीयतां
वितीर्णपर्णा-धरणीरूहां गणाः ॥
इतीव शिक्षां ददतं विदेशगं
विलासिवृन्दारकवृन्दवन्दितम् ॥११॥

प्रियं मनोज्ञं द्विजमण्डलीमुखा-
त्समीतमाकर्ण्य मधुं निजाङ्गणे ॥
लवङ्गिकामोदकरोपहारिणी
रहोऽभ्युदस्थादिव कुम्भिनीवधूः ॥१२॥

समुज्झय भूमिः शिशिरं जडप्रियं
द्विजोपगीतोद्गतिमाधवोन्मुखी ॥
चिरस्य तत्या विभ्रमैः पपे दृशां
निमेषवीतैः परमादरस्पृशाम् ॥१३॥

कषायभावाङ्मुखभूरिपल्लवैः
लघुद्विजातैः स्तवकैर्गलद्रसैः ॥
अनागतस्याऽपि पुरैव देहिना-
मवर्णिवर्गाय मधोः शुभागतिः ॥१४॥

इयेष यावज्जनता शुभागत
निबन्द्धु मेनं त्वरणेनतावता ॥
कुहूःकुहूःकृत्य वने पिकावली
कलैश्छलात् स्कीलितवत्युलूलुभिः ॥१५॥

करालकालीकलिताऽथकोकिला
खलापिकालीमशिषन्मसीमसौ ॥
'प्रमान्थयेः पान्थतती,रिति स्फुटं
'तुहीं' तिवाचा वृधिवाच्यदिम्भिनी ॥१६॥

स्थिरामथास्मै व्रजते रवे गृहा
च्छुभागतं ह्यमदायि यैर्जनैः ॥
प्रदाय तेभ्योऽयमनल्पकं मधु
बभूवभूम्यां बहुधाऽनृणी मधुः ॥१७॥

अयं वदान्यो गुणिनां शिरोमणिः
प्रदाय गोदाय मधुर्मुधामधु ॥
समग्रहीं द्वग्रदभेदिविग्रहाः
कटाक्षधाराः कुटिलाः कुटीभृताम् ॥१८॥

जलात्मतत्त्वेन यमात्मनः सुतं
समर्हणामस्य विधातुमरिरत् ॥
सुतेन तेनैव पदर्चनाविधि
निजालयस्थोऽपिविधिर्व्यदीदधन् ॥१६॥

कलिर्जनानां मतिमोपकोऽसकौ
चिरागतं संप्रति माधवं प्रति ॥
शुभागतं गर्तगतं तु कन्तुना
यदर्ज्यत प्रत्युत दक्तरङ्गिमा ॥२०॥

गुणानुरागेण निरीक्ष्य निर्गुणा-
मपांशुलाचारसखेन पांशुलाम् ॥
पदं वसन्तेन धृतं धरां प्रति
धरारुहाणां निकरैस्तु तं प्रति ॥२१॥

अथास्य मित्राणि नितान्तवाढया
निसर्गवृत्त्या सहकारचेतसः ॥
विभाव्य वाताबलिधूतमस्तका-
न्पदं प्रतीमान्मधुरा भृशं दधुः ॥२२॥

अलभ्यमङ्गै रितिहासपुस्तके
सदागमानां निचयेन चुम्बितम् ॥
अचेतनाना मिद मुद्गमे मधोः
पदापदि प्रेक्ष्य विसिस्मिये जनः ॥२३॥

निजावतारेण वसुन्धरामिमां
कृतार्थयिष्यन्त मवेत्य माधवम् ॥
पुरैष गन्तुं धृतजित्तयाऽऽलयाः
श्रियाऽपि कारास्त्रिदिवस्य मेनिरे ॥२४॥

श्रियं पुरस्कृत्य यताऽमुनाऽवनी-
मशिक्षि लोको निखिलोऽपि यौवनी ॥
मुहूर्त मप्येक मपि स्विकां प्रियां
वियोगतो मा कुरु दुःखगा मिति ॥२५॥

बहूनवश्यायमिषेण माधवे
कुतोऽपि जाते गुणतः क्षमाधवे ॥
मुमोच वाढं कलुषान्तरा सती
प्रगे प्रगे द्यौरिय मश्रुविस्तवान् ॥२६॥

कथंन्ववांत्सदयमुज्ज्वलं सुखै
विंगीय लेखालय मालयं नृणाम् ॥
तदेव वा वस्तु समस्तताज्ज्वलं
जनस्य चित्तेन यदास्यदीकृतम् ॥२७॥

खिलीकृतः स्वाननवाततुल्यया
गणो नृपाणाँ यदि कुल्ययाऽखिलः ॥
तदोच्छलन्मानसरङ्गरिङ्गणां
प्रभञ्जनाभां स्थगयेत्कथं जनः ॥२८॥

समां समादाय दिवः श्रियंभुवि
समागतेऽस्मिन्नतिमुक्तशेवधौ ॥
सुवर्णगार्जंव्रजवित्तदिक्तटं
कृतार्थता माप वसुन्धरातलम् ॥२६॥

शरासनी वाणकरः क्षितेः सखा
सखा तु पश्चादयमागतो मधुः ॥
वियोगिघाताय पुरैव सज्जितं
जतारि मारेण निकर्म कार्मुकम् ॥३०॥

शिरीषलक्ष्म्योघमलीमुलुच्चाग्रणि
जलेजलेशादपि ताम्यतिस्म यत् ॥
श्रमानि तेनैव समागते मधौ
विलासिनीनां वपुषा स्थली वहृ ॥३१॥

क्षणेन विश्रम्य धरातलेऽमुना
श्रिथि प्रियाया मुदपादि न्मवः ॥
अनेन रत्या मनिरुद्ध उद्धतो-
ऽमुनोप्रपि प्रेमसमक्षमक्षरः ॥३२॥

असावुगायै रपनीतलाघवैः
समाविशन्नेव गुणी क्षनेन गाम्
अपूर्वरत्नानि दुदोह दोदं
प्रदर्श्य लोकाय मधुप्रथः पृथुः ॥३३॥

अयं न सत्यं गगनात् समुद्गतो
नचेममाविष्कृतवत्यसौधरा ॥
सरोजकालाभिध एष निश्चयः
सुयुक्ति युक्तं खलु मानसोद्भवः ॥३४॥

अयं न लोकै ददृशेऽद्विपद्मणा
न चोपमानै नेच्न बन्दिवर्णनैः ॥
तरङ्गणै र्वारिधिलङ्घिरंहसो
निजात्मनः केवल मन्वमीयत ॥३५॥

यदर्चनां मञ्जुलपुष्पिकाकरः
करोति फुल्लो विदुरादिरादराद् ॥
अयं स पाताऽवनतस्य माधवो
दृशोः पुरः कस्यचिदेवदेवति ॥३६॥

अयं विधाता विधिपूर्वकं सताँ
मुदं स्वयंभूः कमलासनो बहुम् ॥
अवार्य्यवीर्य्यं शरकोटिशालिनं
स्रष्टा नवं मन्मथ मेष सत्यकः ॥३७॥

भवन्ति लोके सहकारवृत्तयो
विकासिपद्मा नियमेन मानवाः ॥
इति प्रजोय ननु बोधयन्मुहु-
रभून्मधु र्बोध्यनिदर्शनस्वभूः ॥३८॥

तपस्सुधास्रोतसि मग्नचेतसा-
मपि द्वितीयाश्रमभूनिदेशिनी ॥
प्रवेधनायेव विभूष्यकर्णयो:
नगे सगेऽदृश्यत सूचिकाततिः ॥३६॥

विजृम्भमाणाम्रजकोरकोत्पत-
द्विरेफगङ्कारगणातोच्चितम् ॥
निशम्य पैकं रुत मात्मनोदशां
निरीक्ष्य चाध्वन्यजना जुजूरिरे ॥४०॥

पुपुष्पपुष्पं दरकोरकोज्ज्वलं
दिशं दिशं मादयति स्मतद्गुणः ॥
दिशः प्रमत्ताश्च परागकुङ्कुमैः
पस्पराखेल मिव बधुस्तमाम् ॥४१॥

सरोजराजीरजसा सितीकृतः
शिवोंपमा माप सुखेन वासरः ॥
निशोऽपि नोना गणनाऽथजन्मनः
स्मृतः शिवाया गणनाथजन्मनः ॥४२॥

विलोक्य नानाफलपुष्पभास्वरा:
मधुं विनम्रा स्तरवो बभासिरे ॥
यथाऽतिथि वीक्ष्य समागतं गृहे
स्फुरद्विनोदा गृहमेधकुञ्जरा: ॥४३॥

बहिर्गत: विञ्चिदिवोत्पलोत्करा:
निकुञ्जहर्म्यस्य विरेजिरेऽजिरे ॥
चिरागतं वीक्ष्य मधुं रूषाकुला
लताङ्गनाना मिव जिह्मदृष्टय: ॥४४॥

मरुत्यतद्वारिकणानि लोहिता-
न्यरं पलाशानि विलास मादधु: ॥
स्थलीवधूनां प्रणतेऽश्रुसंप्लजां
दृशां प्रगेऽस्मिन्विततक्रुधां श्रिय: ॥४५॥

अलोभयन्विस्तृतफुल्लवल्लरी-
प्रवेल्यमाना गृहभित्तयो मन: ॥
हरिन्मणिद्योतसमुल्लसद्दशांऽ-
शुकावृताङ्ग्य स्तरला इवाङ्गना: ॥४६॥

अकेशरा वेशजनस्य निष्कुटे
विलोकिता गन्धफलीव्यमूर्च्छयत् ॥
क्वचित्कुचित्केशलदेशपेशला
निमेदलाना निव कण्ठकन्दली ॥४७॥

प्रणामभात्रामपि मानिनीजनै-
र्विमानिताना मुपकारकारणे ॥
गृहेऽभवन्वञ्जुलवल्लरीगणा-
विधेः क्षणान्मञ्जुलमञ्जरीयुजः ॥४८॥

विदर्भभूश्रीनलवर्णनोज्ज्वला
विचित्रसंभावनशोभया बुधैः
स्मृना लता वीक्ष्य वसुन्धराशिरः-
किरीटहीरोद्भवहर्षजा गिरः ॥४९॥

प्रधानसूत्रोत्करगूढगुम्फना-
प्रगल्भवर्णावलिकुण्डलीकृतम् ॥
सरोजिनीजाल मवेक्ष्य धीवरै-
र्भृशं शशङ्के फणिभाष्यपुङ्गवम् ॥५०॥

नभः परागैः कुसुमैः पलाशिनो
जलं जलेजैः स्थलपद्मकैः स्थलम् ।।
विकासमानं समवेक्ष्य मानिनी-
लताऽपि जाता स्मितपुष्पहारिणी ।।५१।।

सुमानि गन्धेन सुमैः पलाशिनः
पलाशिभि र्वद्दिप दिशः समावृतन् ।
ततान नम्रं निज माननं जनी
न जातु जज्ञे निखिलं च दिङ्मयम् ।।५२।।

नराः सरोजैः क्वचिदाननैः क्वचि
त्क्वचिच्च नेत्रैः रसितोत्पलैः करा[।
लताप्रतानैः क्वचिदङ्गनाजनैः
प्रबाध्यमाना बुबुधु र्न निर्णयम् ।।५३।।

दिनं सितं वारिरुहैश्च भानुना
निशाऽवदाता शशिना च कैरवैः ।।
अयंहि मन्त्रो यदभिन्नकारिता
परस्परप्रीत्यभिलाषिणां नृणाम् ।।५४।।

सर:पय:पूरनिमग्नविग्रहा
भियेव नैदाघकरालघर्मत: ॥
कृशा वसन्तेन भृशं ववन्दिरे
सरोरुहिण्य श्वलवारिविन्दव: ।।५५।।

न माधवो मोद मुपैतिवीरुधं
न वीरुदेषा मुदमेति माधम् ।।
विनोभयेनेङ्गितमङ्गलोद्भवो
भवेत्कुत स्तद्वलयो र्विलासिनो: ।।५६।

नमेरु मारोप्य तिजाजिरे क्षुर-
न्मरन्दपीयूष ममोदि मुग्धया ।।
व्यसादि नेत्थं यदसावसंशयं
क्षते क्षरन्तारचयां भविष्यति ।।५

गृहाङ्गणे काचिदरोपयत्श्रमा-
दशोकतामेतुमशोकमागमम् ।।
विवेद वालेति न यद्वलादयं
गमी वियोगे भृशशोकहेतुताम् ।।५८।।

गृहे चलल्लोचनसाम्यकाम्यया
न्यरोपि नीलोत्पलवल्लरी यया ॥
शरान्दधत्या विग्रगान्मनोभुवो
भुवोऽपि दग्धा मतिवीतया तया ॥५६॥

समुत्थित श्चोत्पलकाननादहो
ददाह नस्वं नच नैजमाश्रयम् ॥
मनांसि यूनां तु ज्वलितः क्षणे क्षणे
न्यदंदहीद्देहभवाशुशुक्षणिः ॥६०॥

स्तुवन्ति केचिज्जनतापहारिणीं
विचारशीलाः कलिकालतामिमाम् ॥
इयं दशा श्लिष्टतमाऽपि मे परं
प्रवेष्टु मीष्टे नच मानसींभुवम् ॥६१॥

शिरोंऽशुकीयद्धरिताङ्करोत्पले-
क्षणा च जम्बीरकुचाऽम्बुजानता ॥
निरीक्ष्यमाणा रमणीव कुम्मिनी
प्रमोदयामास मनांसि जन्मिनाम् ॥६२॥

अमुं लताराजिविराजिवर्तनी-
च्छविच्छटाऽऽच्छोटितयान्थकृच्छ्कम् ॥
विलोचनासेचनकं मुदानकं
विलोक्य लोकः समयं ततर्प न ॥६३॥

अथोल्ललत्संहतपिङ्गकामुका (विशेषकम्)
विभिन्नमध्या अपि चारुगामुकाः ॥
विशालनील्योत्पलयुग्मधारिणीः
सरोजभावाद्भृशतापसारिणीः ॥६४॥

प्रहर्षयन्ती हृदवारिणाऽरिणा
विभीषयन्तीः परिणाहिनाऽहिना ॥
विशोभिरम्भायुगभासिताः सिता
दृशां निपेया वपुराभयाऽभयाः ॥६५॥

नताः फलाभ्यां धृतमध्यवापिका
रसावभुग्नाः प्रतिपण्यवीथिकम् ॥
लताश्चलन्ती रवलोक्य मानसे
कुतूहलोत्फुल्लगलैर्विसिस्मिये ॥६६॥

मनस्विना मपि नतिदानशङ्कवः
तपस्विना मपि हृदिरागरङ्कवः ॥
अचेतनेष्वपि कलिकाकृतः समां
व्यमोहयन् मधुदिवसा वसुन्धराम् ॥६७॥

वल्लीशतोज्ज्वलतनोर्विलसत्सुरस्य
कालिन्दतीरतरुनीरविलासभाजः ॥
मान्द्यं भिनत्तु निखिलं मम माधवस्य
पादारविन्दमकरन्दनदीजविन्दुः ॥६८॥

सर्वासु पञ्चनदविश्वपरीक्षिकासु
प्राथम्य माप खलु यो मणि रुत्तमानाम् ॥
तेनाय मुद्रुचि जयेन कृते निबन्धे
सर्गः समाप्ति मभजत्प्रथमोऽतिहारी ॥६६॥

इतिश्री महाकवि जयप्रणीते 'ज्वाहर वसन्त साम्राज्ये'
नाम महाकाव्ये वसन्तागमो नाम
प्रथमः सर्गः ।

॥ द्वितीयः सर्गः ॥

—०ओ३म्०—

अथाऽस्य साहाय्यविधित्सया स्थिरां
स्थिराङ्गबन्धा स्त्रिदिवाद्दिवौकस; ॥
य आगता स्ते दधिरे पलाशितां
क्व कार्य्यसिद्धयेकदशां विचारणा ॥१॥

अनुज्ञयैवाऽखिलरूपधारणा-
वचोऽभिमेने सुमनोव्रजो विधेः ॥
कृताशतावन्हिमहाश्मभस्मनां
क्व शेमुषी नाथसनाथजन्मिनाम् ॥२॥

अयं मनोज्ञःसुमनोव्रचोऽपिनो
कथञ्चिदूहे सुमनःसबन्धुताम् ॥
अनादि जातिर्मनुनाहि यस्य या
यथोक्तधर्माश्रयणेन तस्य सा ॥३॥

ह्रदाऽपि संतापहत: सरस्वती-
सदागमच्छाय मयेत योजन; ।
तदीय मेषाऽपि विवेकवारिणा
त्रृणोति तप्तं करुणाकरा मन: ॥४॥

मही मुपेन्द्रे चलिते तव स्थिति:
शुभेहनेतीन्द्रनृपेऽपि सर्पति ॥
पुरैव यानं परिरम्भविह्वला-
दरम्भयाऽरम्भिभयेन रम्भया ॥५॥

गृहीतकर्णैः सहसाऽथ कौरवैः
शिलीमुखै रावृतमूलचूलक: ॥
उपैत्यवासो गहनं भटोऽर्जुनो-
गुणैरयं माधवसंगजैरयम् ॥६॥

शिर: स्थितेनाऽखिलकुम्भिनीभुजां
सुवर्णसुच्छायितभूमिनाऽमुना ॥
व्यनोदि सर्वोऽपि विचित्रनर्मणा
नमेरुणा ज्वाहरलालवज्जनः ॥७॥

स्ववर्ष्मदं रोहितक ! प्रजाकृते
प्रजापति स्त्वां यदि नाकरिष्यत ॥
असौ प्रजाया विविधार्तिवार्तिकां
कथां कथंकार मयाकथ्यित ॥८॥

स्थितोऽथ तावन्मदनागमो बहि-
र्व्यलोकि यावन्न जनेन कामिना ॥
विलोकितः क्रूरभियेव रुद्रतो-
विवेश तूर्णं हृदयेऽस्य चाचलिः ॥६॥

जटा-शिखा-दण्ड-कलाप-संहिता-
विकार-वल्ली-घन-पाद-भाधरम् ॥
मदागमं संदधतीं द्विजोज्झितं
वनी मनूचानचयोऽस्तवीत्तराम् ॥१०॥

सुवर्णयोः किंशुककर्णिकारयो-
र्विचित्रभासो रतिगन्धबन्धनम ॥
मिलिन्दवृन्दानि किमाचमिं दधुः
स्मरस्मयस्मेरविलोचनानि नु ॥११॥

विकासमासे स्वपि रक्तिमोत्कटं
स्वतो जितास्ताः फलिताम्रताम्रभाः ॥
हरित्प्रभाबाधितकामनीयकं
पुरश्च ते किंशुक ! किं शुकाननम् ॥१२॥

नरेण नारङ्गक मैत्रि मत्तिका-
स्वैरवशपायप्रशस्तस्पृशं भृशम् ॥
अचिन्ति चिन्ताबहुलं जलोज्ज्वलं
चलं धराचक्र मवक्र मक्रमम् ॥१३॥

स्पृहाकुला जाततरा व्रजोद्भव-
मश्लक्ष्म नीलं मसृणं मणिं यदा ॥
स्वचन्तुपा स्म स्तदभिन्नरूक्तमं
तमाल मालोक्य गतस्पृहा नयम् ॥१४॥

विलोकिते स्थैर्य्यं मथाश्नुतेभृशं
श्रुतेऽसिदोलाति मनः शरीरिणाम् ॥
अपेक्षयेदं श्रवसो र्विसंशयं
दृशोर्वरीयः प्रतिवेशि मानसम् ॥१५॥

मधुव्रतव्रातपरिभ्रमाङ्कित-
च्छदच्छविच्छायितमञ्जरीयुजः ॥
वियोगिनीनां कलयोः कपोलयो-
ररण्यलोध्राः परिहास मादधुः ॥१६॥

न नन्दनैः स्थान मदायि चन्दनै-
र्भुजङ्गमेभ्योऽपि कुशङ्कितं जगत् ॥
प्रतिप्रतिष्ठां जनमूर्ध्नि चेन्मन-
स्तदेदृशानां कुरु संग्रहग्रहम् ॥१७॥

भुजङ्गभुग्नोऽपि चिरात्तथात्मवा-
ञ्जडो न वाच्यः खलु चन्दनद्रुमः ॥
जडा वयं ये लवतोऽप्यसंगतो
धरामहे धीरधियोऽप्यधीरताम् ॥१८॥

अलाभि रागो बहुरेव कामिनी-
पदाहतैः काममजनैर्न विस्मयः ॥
अशोकतेप्सामनसामसौ पुरा
प्रवर्तिता शाखिभिरेव वर्तनी ॥१९॥

व्रजन्विकासं मधुनाऽधुनाऽधिकं
समद्त्तमद्रणो रतिमुक्तको मुनिः ॥
जिरत्नकीर्तेः शितसंशयारया
चुकोट कोटीः कुटिलः कुटुम्बिनाम् ॥२०॥

भृशं विशुद्धैः सततं वनासिभि-
रतीत्य सर्वं गहनं सुदुर्लभा ।
यथाऽऽप्यते हन्त वने समुन्नति-
स्तथा न लोके सरलैः समुन्नतिः ॥२१॥

विदार्य्यमाणा न्सरलागामान्नृभि-
र्निभाल्य सद्यः कुटिलैर्न भूयताम् ॥
न मार्य्यते किं नकुलै रहेः कुलं
मृतिस्मृति विस्मृति मागता कथम् ॥२२॥

त्वया विघातः! कितवाः कृताश्च य-
त्कलिद्रुमा यद्रचिताश्च साधु तत् ॥
न साधु चक्रे सरलस्तु सुस्तव-
स्तथोचितः कर्तुमयं कलिस्तव ॥२३॥

पदे पदे सन्तिकलिद्रुमा मधौ
क पाद माधाय चलामि दूरगः ॥
इतीव चिन्तां सरलस्य सुस्थिरां
भृशं निरासे कलिमारमण्डली ॥२४॥

इमां गुरुं गामपि लाल ! भूमणे !
त्वयि ! स्वशक्त्या महिषीं वितन्वति ॥
विराजमाने कलिमारके त्वयि
निवास मीयात्क्व कलिद्रुमावलिः ॥२५॥

न मन्यतां नाम यदत्र केनचि-
द्रघो महिष्यां यदलेख्यजोद्भवः ॥
इदं मदुक्तं सुतुषारसारभं
समक्षमक्ष्णो रयि ! लोक ! लोकय ॥२६॥

प्रभूतभूतोत्करभूतिदायिनी
चिरेण दृष्टा गिरिसंभवा मम ॥
भवे भवे द्रावुकभूमभाविनी
शिवा शिवानां निकरेण सेविता ॥२७॥

त्रिलोकलोकावलिमौलिमालया
विघृष्यते यस्य सदा पदद्वयी ॥
अचिन्त्यधामा स मनीषिहस्तिने
कवित्वशक्तिं वितरेच्छिवापतिः ॥२८॥

विलोचनाभ्यां रभसेन कौतुका-
द्विरभ्यमाणेव मुहुर्मुहुर्वने ॥
कटुस्वभावं विकसन्मरीचिका
मरीचिका रक्तमजीजनज्जनम् ॥२९॥

पलाशलीलाजयिवाह्यडम्बरां
जवेन गुञ्जां यदगच्छदात्मभूः ॥
तदस्य सौन्दर्य्यगुणे गुणातिगे
विविच्यतेऽस्माभि रभाक्तमास्यदम् ॥३०॥

सुगन्धिरन्धंकरणी रसैरसि
भृशं कुलीनाऽसि तथाऽसि सुन्दरी ॥
लवङ्गिके ! ते सकलं मनोहरं
प' तवैका मधुपेन सङ्गतिः ॥३१॥

चिता मरीच्या कलितैलयाऽलिभि-
र्विलेपयन्ती हृदि पुण्ड्ज रसम् ॥
विशालभूतीनजरामरद्युती-
रोतु युष्मान्विजया जयावहान् ॥३२॥

यया व्यलोक्यादरसंभरेण स
क्रतुक्रियार्थं निजलब्धसज्जनिः ।
असावपि प्रीतिपरं विलोकिता
शमी समीचीनतया तया जनैः ॥३३॥

समापतन्दूरत एव चम्पया
प्रवालहस्तै र्मधुपो निरासियत् ।
तदस्त्वमुष्या अजरामरश्चिरं
कुलीनरामाभरणं यशोमणिः ॥३४॥

जिनेन योऽमानि महार्घसंपदा
चरित्रचिन्तामणिरत्नपुङ्गवः ॥
तदङ्गिनी कायनिकायशोधनैः
स्फुटाश्रयेयं पररत्नयो रपि ॥३५॥

सहोद्भवत्सत्फलपुष्पसंपदां
निदर्शने कोहलिनीद्रुमे नृणाम् ।
त्वयैव पूर्वापरकालशङ्किति-
र्व्यधायि बीजाङ्कुरयो निरुत्तरा ॥३३॥

सकण्टकां चिक्कणचारुविग्रहां
धृतानुरागां बहुशोऽधिमञ्जरि ॥
द्विजव्रजास्पृष्टतनुं महीयसी-
मयत्नलब्धाधिकमाधुरीधुराम् ॥३७॥

मरुस्थलस्थालनिवासवासना-
समुद्भवद्वातविधूतमस्तकः ॥
कुमारिकां मारशराहतात्मवा-
न्विभुज्य चित्तेन भृशं विदूनवान् ॥३८॥

लवङ्गिकापादपरागरञ्जितं
प्रगेह मायान्त मवेद्य माधवम् ॥
मनोहरश्रीः सुमना अपि प्रभुं
विवदुभावं समुवाह निर्भरम् ॥३६॥

गुणौघयुक्ताऽप्यमुना विकासितां
न हन्त निन्ये सुमना मनागपि ॥
क ईश्वरः शश्वदसख्यशालिनां
विधातु मैक्यं भुवि पाणिनेः परः ॥४०॥

सतीमिमां त्वं भरताग्रजो यथा
जनप्रवादा जनकात्मजामिव ॥
निरागसं माधव ! रागशालिनीं
न मलतिं हन्त ! विहातु मर्हसि ॥४१॥

यथेच्छमच्छाम्बुजचक्षुसां वसु-
द्वयं सहस्त्रं कुरु मित्र ! माधव ! ॥
गृहीतहस्तस्य परं न मालती-
लताविहस्तीकरणे तवाऽर्हणा ॥४२॥

विजातिभावाः सततं जगद्रताः
कुलीनतां ते स्फुट मुद्गिरन्त्यमी ॥
मधुव्रतान् स्तोषयतो दिवानिशं
वदान्यतायाः कथनं तवाऽथ किम् ॥४३॥

अयं मनोज्ञः सुमनोव्रजोऽपि नो
कथञ्चिदूहे सुमनःसबन्धुताम् ॥
अनादि जाति र्मनुनादि यस्य या
यथोक्तधर्माश्रयणेन तस्य सा ॥४४॥

वियोगतोऽरुच्यरुचिश्लथिच्छटां
सताततिर्नो दधते विनाऽमुना ॥
अतः स्वजातिं द्विजवन्दितामपि
विहाय हायं ननु नन्मयोऽजनि ॥४५॥

कदाऽप्ययुक्ता नकुलास्थिरा रुहा
सदा स्थितिं स्वां मधुरांच बिभ्रती ॥
न खण्डिताभ्योनददौ महारसा
रसालवीरुत्कलिका कलि किल ॥४६॥

स्फुरच्छदा मेचकभृङ्गभङ्गुरा
प्रफुल्लवल्ली मवलोक्य माधवीम् ॥
सुवेषभूषां विचल श्चलभ्रुवं
स्वसुभुवं स्मेरमुखोऽस्मरन्मुहुः ॥४७॥

गलद्रसैः श्लाघ्यगुणैः परिप्लुतां
रसालवल्लीं स्तवकैः समन्ततः ॥
विलोक्य गर्वं शिथिलीचकारनो
प्रशस्यभावा कवितकृतां ततिः ॥४८॥

रसालवल्ली वहुभूषणै भृंशं
सुवर्णजैः संवलिता भवेद्यदि ॥
तदोपमीयेत सुवर्णभूषणा
मनीषिणा माघकृतिः कथंचन ॥४६॥

विशालशाखाधिगमाधिकागमा-
न्निपात्यमाना रभसाद्द्विजार्भकैः ॥
पवित्रगन्धा मकरन्दविन्दवः
प्रमाणिता विप्रजनेन विप्रुषः ॥५०॥

अपांशुला का ? सहकारमञ्जरी
गुणानुगा का ? पुनरुक्ति मिच्छसि ॥
वदन्ति द्वयं वदके ? कवीश्वराः
कवीश्वराः के ? शुकसारिकादयः ॥५१॥

स्फुटं कुवर्णानि हुमानि या दधे
परैः परीता परितः पुरा परम् ॥
शुचीन्यनेनाऽद्य ससार सारसा
रसालिना लीनरसालिना रसा ॥५२॥

विहाय शुद्धा न्मधुपाय माधवः
प्रवालदाने दधदुत्तमं पदम् ॥
असत्वरोत्कोचजलाञ्छनोद्भवां
पयाविदानींतनकालकालताम् ॥५३॥

मधाविदानींतनवृत्तसोदरं
विलोक्य वृत्तं दुद्रुवे ह्रदामम ॥
यदुग्ररश्मा वपि पूरिताः सता-
मजस्र मुत्कोचतमिलयाऽऽश्रयाः ॥५४॥

अयं कटिस्थभ्रमरीभिरीरितः
पुरोगवल्लीशितकण्टकाकुलः ॥
अवाप रामाद्वयकर्षितोच्छ्रस-
च्छिखाङ्घ्रिसोपानगशिङ्मविभ्रमम् ॥५५॥

रसालमन्दारनमेरुचन्दना-
न्द्रुमानिनेव शुभान्विधिर्यदि ॥
व्यधास्यताऽ ज्ञास्यत क स्तदातदा-
समाशना : काटवपाटवाटवी: ॥५६॥

तथा प्रियङ्गुर्वकुलश्च चम्पको-
नमेरुमन्दारतिलादयो द्रुमा: ॥
तदङ्गजस्पर्शसुधाविकासिनो
विलासिनीदैवतका इमे समे ॥५७॥

अदायिषातां ददताऽपि शाखिनां
गणाय ते पुष्पफले न वेधसा ॥
तथाऽपि किं तेन तवाऽस्त्यलौकिका
जगद्द्रुमाणां धुरि गन्धसारता ॥५८॥

विनाऽपि पुष्पं यदिगन्धवान्द्रुम:
स गन्धसारस्य सखाऽस्ति चन्दन: ॥
अथाऽ भविष्यत्तवसा सुमे सति
तदन्वया तद्व्यतिरेकिणी स्फुटम् ॥५९॥

अकारि कारुण्यपरेण देहिनां
त्वया विधात; सकलं मनोहरम् ॥
प्रद्रष्टु मैरावत मङ्ग कन्तुभं
सहस्रनेत्रा रचिता न किंवयम् ॥६०॥

प्रफुल्लमल्लीवनवल्लीवेल्लितः
परं चकासे मधुमल्लमल्लकः ॥
भृशं विरक्तानपि रञ्जयञ्शरैः
कुमुद्वतीमानविमर्दकर्दमैः ॥६१॥

यथायथं जीवनकालदायको
जनेषु जीवातुरयं महौषधिः ॥
इतः परं यौवनकालइत्यतो-
वसन्तकालस्तु परात्परोऽवधिः ॥६२॥

सलीलनीलोत्पलकुम्पलोज्ज्वले
धिकावलीवल्लभनीयशीफरे ॥
मरुच्चलत्पिप्पलपल्लवोल्वणे
हसन्वसन्ते सकलोऽप्यकालः ॥६३॥

दिव्यं पत्रचयं बिभर्तिखलुयः सर्वर्तु रम्यः फलैः
नित्यं पक्षधरैः सकुन्तनिवहैः संसेव्यते यः परैः ॥
दत्ते मानसवाञ्छितं- तनुभृतां बिभ्रँश्छविं नन्दने
सोऽयं राजतिराजराजमहितः श्रीगान्धिकल्पद्रुमः ॥६४॥

पुन्नाग माहुः समरेऽमरास्त्वां
निगद्यसे शान्तिधनैः शमी त्वम् ॥
तथाऽपि विज्ञाः फलनात्फलानां
त्वां गान्धि ! कल्पद्रुम मामनन्ति ॥६५॥

अपूर्णराज्यस्थिति रेवनन्दनं
किमीयिवान्भारतनन्दनेश्वर ! ॥
कस्तूरिकामोदभृताऽपि दुःखिनी
त्वया विना भूमिरियं सनन्दना ॥६६॥

विकासभाञ्जि स्वरुचा सुराणा-
मुद्यानपुष्पाणि विवर्णयन्ती ॥
नायादियं मेखलु कौलुकायाऽ-
तिभव्यकाया जगदीशमाया ॥६७॥

समासभूतिं भगवान्समाधवो
निजां दिदृक्षुःस्वयमेव लीलया ॥
पृथक्पृथग्विग्रह माचरत्ययं
प्रशस्यते चागमवेदिभिर्भृशम् ॥६८॥

शरीरिणां या स्मरणेऽपि कामदा
घनैस्तृषार्तं रधुना विलोचनैः ॥
शिताऽपि पीता हरिताऽपि रागिणी
तनोतु सार्शं भुवि माधवीत्रयी ॥६९॥

वरुण-विदुर-शक्रै-रर्जुनेनाऽथ नित्यं
द्विज-भणितिमनोज्ञं स्वस्तये संस्तुतो यः ॥
विरचितकरुणौघः स ·श्रतापूर्वलक्ष्मीः
वितरतु नितरां मे माधवः श्रीफलानि ॥७०॥

कर्णे निधाप्य कल माभरणं करण्या
नेत्राञ्जनं व्यधित यः शुचि नागणेयम् ।
तेनाऽय मुद्रुचि जयेन कृते निबन्धे
सर्गः समापदतिमञ्जुलभो द्वितीयः ॥७१॥

इतिश्री महाकविजयप्रणीते व्याहरवसन्तसाम्राज्ये
नाम महाकाव्ये वृक्षावलीवर्णनं नाम
द्वितीयः सर्गः ।

॥ तृतीयः सर्गः ॥

—०ओ३म्०—

अथोज्ज्वलं पल्लविते सुमे द्रुमे
विपल्लवं वीक्ष्य करीरमेककम् ॥
वियोगयुक्-पैङ्गल-पङ्गु-जङ्गलै
र्भृशं महाशोकभृतै रभूयत ॥१॥

रराज पाद्याचमनीयमर्पय-
न्सुधापवित्रै र्मकरन्दवारिभिः ॥
महार्घमर्घं मधुपर्कमद्भुतं
फलैर्मधुत्थैश्च नतः क्रमेण यः ॥२॥

परोपकारैकनिदानसंपदा
फलावलीभूरिविधत्वजन्मना ॥
मुदर्तु राजागमजातया च य-
स्तुनु वहन्कण्टकितां शिखावधि ॥३॥

इहास्व भद्रं कथयाऽङ्ग ! कावनी
कृता च काऽशोकभृताऽपिशोकभृत् ॥
त्वयाऽऽयते ति स्फुटमालयन्कलैः
पले पले यः पिककोकिलाकृतैः ॥४॥

अपीतवर्णैर्मृदुभिः फलैश्च यो
अनैर्हरिद्भिर्गुरुभिश्च लोहितैः ॥
त्रिधादधानो भिषगुत्तमो यथा
गदापहारी त्रिफला मिवौषधम् ॥५॥

प्रभङ्क्ष्यमाणानवबुध्य पल्लवा-
न्विपल्लवोऽय किल वेधआऽरचि ॥
इर्दसखे ! व्याकरणाभिमानिनां
बुधब्रुवाणां बहुसंमतंमतम् ॥६॥

भवन्ति सन्तोऽपि च नो सरस्वती-
रसप्रवाहा इव दृष्टिगोचरम् ॥
फलानि पुष्पाणि कुतोऽन्यथा स्वतः
स्वतर्कत स्तर्कयतीति तार्किकः ॥७॥

प्रयातु मस्य स्वपदेषु पल्लवाः
प्रयाच्य नीताः खलुदूरगामिभिः ॥
श्रमातिरेकादतिशूनजङ्घकै-
र्गतावशक्तै रिति केऽपि मन्वते ॥८॥

परं नचैतद्विबुधाः प्रमएवते
वितन्वते वाचमथोज्ज्वलामिति ॥
अयं यदिस्यात्प्रवितीर्णपल्लवः
तदा कथं स्याद्वद धीर ! पादपः ॥९॥

अपादपश्चेदथ जीवनं विना
न जीवनं सेत्स्यति किन्तु भङ्क्ष्यति ॥
अयं विचारो विबुधैः समीरितः
पुरः कवीनां च मया निवेदितः ॥१०॥

क्षमाभुजां मौलिमणिस्तपस्विना- (युग्मम्)
मसौ द्विजानां विदधाति माननाम् ॥
जहाति नो रक्तमुखः कुसंगतेः
पलाशितामागमबोधितोऽप्ययम् ॥११॥

करं न दत्ते कुटिलोऽभिमानतः
शितान्निजान्दर्शयतेऽपिकण्टकान् ॥
इति विकोप्याऽधममूपवजनै-
र्विपल्लवोऽकारि मतैक्यभाजनैः ॥१२॥

मया मतीये गहनेऽत्रकीतिते
विदः प्रमाणं परमप्रमाहृदः ॥
नहि प्रमागम्यपदार्थसंकथे-
ऽविदः प्रमाणं परमप्रमाहृदः ॥१३॥

शरीरवृक्षं सृजता विपल्लवं
शरीर मप्येतदसर्जि तादृशम् ॥
कुतोऽन्यथा दुःखमयं शरीरिणां
दरिद्रतानिद्रितरश्मिवर्षणाम् ॥१४॥

करीरमालोक्य विपल्लवं न्वहु
स्तथाऽस्मदीया हृदयाऽऽधिवासना ॥
व्यथायिधात्रा यदचेतसामपि
स्वकर्ममर्मानुगतैव भावना ॥१५॥

सुवर्णपुष्पां विचिनोति मेदिनीं
विपल्लवत्वेऽपि विचारवाञ्जनः ॥
अमूदृशीभि र्भविकं विपष्युजा-
मकारि कारीरकथाभि रात्मसु ॥१६॥

विपल्लवत्वं विबुधैर्न निन्द्यसे
फलेग्रहिं त्वां कृतवान्यतो विधिः ॥
भवाम निन्द्या नियमेन निष्फलं
शरीर मेतद्दधतो वयं जनाः ॥१७॥

निरन्तरं जन्तुकुलानि पोषय-
न्फलैश्चमूलैश्च निजात्मनाऽपि च ॥
त्वमेवधन्योऽसि धरातलेऽखिले
परोपकारैककृति स्फुरद्वृतिः ॥१८॥

तनूभृता माजनुषः फलादिभिः
सदा परेषा मुपकुर्वता गणान् ॥
धराकुटुम्बेन निजोदरंभरिः
करी करीरेण न साम्यमर्हति ॥१९॥

वसुन्धराया मुख मुज्ज्वलं यदि
भवादृशै रेव तदेति मे मनः ॥
समूल मुन्मूल्य मृणालवन्निजं
शरीर मप्यन्यजनाय दायिभिः ॥२०॥

गते त्वयि द्यां तव वर्ष्म वेश्मनि
सतां विहारं कुरुते दधिव्रजे ॥
इदं पुनर्नोऽनलभस्मसात्कृतं
कुतोऽपि संस्पृष्टमपीष्टनाशनम् ॥२१॥

विपल्लवत्वे तव विप्रपत्त्रिणा-
श्छदैकभूतिप्रथिताखिलश्रियः ॥
वमन्ति केचिद्गरलौघसन्निभं
महीध्रनागा इव दुस्सहं वचः ॥२२॥

न पक्षपातेन वयं त्वरामहे
स एष धर्मोऽस्मि पतत्रिणां पतः ॥
सतां च मैत्री मधुना सहापिका
विकासयन्ते तवनः प्रगुणाः ॥२३॥

क्रियन्त एतस्य यदत्रदारकैः
स्वकेलिखड्गाः शुभहोलिकोत्सवे ।
तदस्य होल्येव विवेद नो परः
पराजितं पुण्य मणीयसोऽनणु ॥२४॥

अमुष्य हृद्यैः कुरुते फलैर्जनो
जलोज्झितं भूरिविधं च तेमनम् ॥
परं सुतक्रेण विरच्यतेऽस्य था-
ऽतिरिच्यते सा समतोऽत्र कढ्ढिका ॥२५॥

लवङ्गकर्पूर-मरीचिजै-र्गुणै-
र्निमज्जयन्ती हृदयं मुदम्बुधौ ॥
विदूरयन्ती नववष्मकार्श्यकं
इदं क्रियात्सा मम चर्मवर्मकम् ॥२६॥

अथो अवश्यायजवारिवारिणी
मरुच्चलत्पङ्कजधूलिधूसरा ॥
रसालवृन्दोज्ज्वलमञ्जुमञ्जरी-
गुणप्रकर्षाद्द्रु गिणीषु धोरणी ॥२७॥

ससम्भ्रमा स्वागतकारकारणे
पतत्रिरावोत्कटभावभाविनी ॥
समागते स्वामिनि चीनगामिनि
विराजतेऽसौ वनराजिकामिनी ॥२८॥

शिरोधुनाना स्फुरणेन वीरुधां
द्विरेफझाङ्कारणगीतगायिनी ॥
वसन्तसेनेव विमोहितद्विजा
वसन्तवेला हरते मुनेर्मनः ॥२६॥

नितम्बिनीवाविलसद्विलासभूः
सखेव साधुद्विजपक्षपातिनी ॥
जुगुञ्ज गङ्गेव मधुव्रजप्रदा
वसन्तवेला जितविश्वमानसा ॥३०॥

रजोऽम्बरात्क्षीणभवत्पयोधरा
धराविलग्ना विकलालिशालिनी
वसन्तवेला नितरां वियोगिनी
वियोगिनीभिर्दद्दशेऽतिकृच्छ्रतः ॥३१॥

सुशीतवाताऽपि सरोजकस्वरा
महोष्णनिश्वाससमुखद्युतित्यजाम् ॥
प्रमादिनी संततये वियोगिनां
वसन्तवेला न ददौ मुदावलीः ॥३२॥

पतद्भिरुच्चैर्मरुता रुतालिभिः
परं परागैर्जनताधियीऽन्धयन् ॥
त्रिलोकलोकाननकालिमाकरः
वसन्तकालः कलिना किमागतः ॥३३॥

सपङ्कभावोऽपि सुरोज्ज्वलेऽप्ययं
पुराणशाखाग्रहिलद्विजोऽपि च ॥
वियोगिघातासिततादिकारिणां
वसन्तकालो विजहौ न कालताम् ॥३४॥

शरीरिणां हन्दि पुराऽथ दीर्घिका
गृहाणि चोद्यानलताश्च पादपान् ॥
विकासिता मानयता जनव्रता
न कालताऽनेन न निह्नुता निजा ॥३५॥

अनेन झाङ्कारकलापवैभवैः
प्रपूरिताशाः जविनो मदोद्धताः ॥
मनस्विनीमानसमानतुङ्कृतः
कृतं हितानां ग्रहिलाः शिलीमुखाः ॥३६॥

समापतन्त्यस्त्वरया समाननं
वियोगभाजाऽतिवियोगभीरुणा ॥
जनेन यूना मधुपायिपङ्क्तयः
शशङ्किरे हालहलस्य गोलिकाः ॥३७॥

सुकोशदण्डादिविभूतिभूषिते
सरोरुहेऽराणि शिलीमुखेन यत् ॥
तदेव यूनां सहसा पराजये
स्मरेण तेने ननु डिण्डिमध्वनिः ॥३८॥

समाहतेन भ्रमराभि रुद्रुतं
चिरेण दूरीकृतकेलिका अपि ॥
वसन्तकालीयकथानकेनके
नकेनकेलीहृतचेतसोजनाः ॥३९॥

अथेन्द्र-रम्भा-सितताल-गुग्गुलु-
द्रु म-प्रसूना मधुपुष्पपेशला ॥
वसन्तवेला महहाऽऽप वारुणी
चराचरश्रेणियांपगां घूर्णला ॥४०॥

चिरस्य पद्माश्रयया सह श्रिया
वने वने खेलति माधवे नृणाम् ॥
वियोगखेदादनिशं दिवानिशं
प्रशान्ति मन्तर्दधते न वासवः ॥४१॥

भृशंभ्रमास्वास्थ्यविचित्तताकृतोऽ-
मुतो वउन्ताद्बहुतङ्कमायता ॥
जनेन यूना नितरां प्रतुष्टुवे
वियोगभाजा मधुविंत्रयी जनः ॥४२॥

वियोगदुःखानलजैः शिखाशतैः
प्रतप्त मातपयता दिवानिशम् ॥
प्रसूनकालेन तपर्तु बन्धुना
भृशं प्रखेदं गमितो वधूजनः ॥४३॥

प्रपश्य खेदं गमिता मितात्त्वरा
त्त्वरन्मरन्दै गुंणिना सरोरुहैः ॥
सुमालिनीश्छन्नकछन्नगामिनी-
रनेन ता मारवदेशकामिनीः ॥४४॥

वियोगभाजां निदधुर्भृशायिताः
स्वजन्मना तत्तदुपात्तराष्ट्रकाः ॥
न वाङ्करं वाढमनङ्गसङ्करं
न मङ्गलं जङ्गलदेशमङ्गना ॥४५॥

अयं स्वयं गोस्तनगोस्तनीफलै-
र्निषिच्यमानो मकरन्दनिर्झरैः ॥
सुधासरस्यन्नपि सर्वभूतले
वियोगभाजां हृदये निदाघति ॥४६॥

सुपुष्पजातेन विजातिबन्धुना
सुबन्धुना घूर्णितलोचना बहु ॥
प्रमाद मार्दि ददता पदेपदे
भृशं जजृम्भे मधुना जनावलिः ॥४७॥

निशामहस्तो महदीनगे ततः
पदो स्ततोहस्तयुगे ततोऽप्ययम् ।
रदच्छदे राग इतोऽपि मानसे
विलासिनीनां मधुना स्थिरीकृतः ॥४८॥

निषेविता या चिरमेकभावना-
निमज्जितस्वान्तपरै विंदांवरैः ॥
प्रदर्शयन्ती कुमुदं विषायिता
सरस्वती साऽपिकिलाऽधिमानसम् ॥४९॥

नितम्बविम्बारुणकान्तिकन्तुका
विचित्रपादा नवमेखलाभृतः ॥
प्रसन्नभावा अपि भूभृतां चया
विषण्णभावान्युवकान्चितेनिरे ॥५०॥

पलादिकालप्रमितिः प्रसूनतो
यथैकतानेनकृता वियोगिभिः ॥
विधातु मञ्जैरपि शारदैस्तथा
शका न वैज्ञानिकविज्ञमण्डलैः ॥५१॥

समाधिसंभावितचित्तरंहसा-
मकालमाशङ्क्यमृतिं वियोगिनाम् ॥
बुभूर्षुराशाः स्वकरैः कृपानिधिः
पुरैव भेजे रवि रुत्तरायणम् ॥५२॥

मत्तीर-चितं मरुस्थलं
भवताऽपाप मिहाप्यतां सखे ! ॥
मत्ती-रचितं व गुम्फनं
भवतापैकहराद्वराश्रयम् ॥५३॥

माहात्म्यमस्य कपिलस्य चकार तीर्थे
बीकाणराष्ट्रगजनेरसमन्तिके यः ॥
तेनाऽ य मुद्गुचि जयेन कृते निबन्धे
सर्गः समापदतिमञ्जुकृति स्तुतीयः ॥५४॥

इतिश्री महाकवि जयप्रणीते 'ज्वाहरवसन्तसाम्राज्ये'
नाम महाकाव्ये करीरवर्णनं नाम
तृतीयः सर्गः ।

॥ चतुर्थः सर्गः ॥

विप्रोगिनीनां मुखातसमारुतै-
र्गतापराधा न्यरिभूतभूतयः ॥
ग्रहीतुमार्य्यानपि दक्षिणाशया
शया यमीया इव वायवो ववुः ॥१॥

निबध्य वाढै विषजस्य तन्तुभि-
र्मधुव्रतैर्घातयसे वियोगिनम् ॥
त्वमेव शस्योऽसि दुमोदयादियं
वसन्तवार्यो ! तव कीर्तिकीर्तना ॥२॥

प्रदर्श्य पश्याय शुचिं निजप्रथां
दधासि चेतः कमलं वियोगिनाम् ॥
निगूहसे चाशुगनाम इत्यहो
तवैव वैटोत्कटताटि कायटम् ॥३॥

असंशया वा मनसा निशामयाऽ-
मयावहा स्त्वं पवमान ! मे गिरः ॥
वियोगिभेदा त्पविमान इत्यतः
च्युतः प्रलम्बोऽनिल ! ते स दण्डकः ॥४॥

तवाऽनिलाङ्गेष्वयमस्ति वालधि-
रिकारचक्रीकरणं तु वालधीः ॥
कुतोऽन्यशा त्वं च शिशुश्वदाहक्र-
च्छिशोश्च ते पुच्छगुलुन्छसंततिः ॥५॥

कषायतिक्ताहिमवारिपायिनोऽ-
पिखिन्दता वत्सलपत्सलाशिनः ॥
त्वयैव पादे मधुवात ! पातितः
पतञ्जलि विश्वनिपातिताञ्जलिः ॥६॥

भुजङ्गवोष्ठी, विषजानि, पल्लवाः,
कठोरभूतावसति, त्रैडालयः, ॥
इमे सखाय स्त्व मर्मभित्तमाः
प्रकुर्वते त्वामपि मर्मविच्चमम् ॥७॥

स्वभूकतेजो मरूतां कलेवरे
क्रमेण पञ्चाऽपि निहन्तुमन्तरे ॥
अपि मजन्पञ्चजनस्य पञ्चतां
न पञ्चता मञ्चसि केन चञ्चल ! ॥८॥

इतिप्रकारैर्बहुधा कटूक्तिभिः
गखेन यूना पवनो वियोगिनाम् ॥
मनोजनाराचभृशायितात्मना
जगत्त्रयीपावनकोऽपि दिद्विषे ॥९॥

पपात कूपं शुचिकर्म धर्मगा
धियो विभूतिः कुत एव देहिनाम् ॥
स्मरे स्मरारे रपि मोदनोदिनि
धनुर्गुणाने सति शेमुषीमुषि ॥१०॥

स नास्ति पन्था नच सा विभावना
न तानि शास्त्राणि यदैकमत्यगम् ॥
जगद्विचित्रं परमस्य शासनं
न लङ्घते यत्र निरंकुशा मतिः ॥११॥

द्विजैः कृपास्तै रुरसप्यं पिप्पलं
'नमः शिवाये' ति निगद्य यत्पयः ॥
खल ! स्मर ! दिस मनेनवारिणा
तवारिणा नून मवारि वैरणा ॥१२॥

न पशुं रस्पर्शि धृता नचच्छुरी
नचाऽऽरिखड्गः पुनरथ्ययं यदि ॥
वियोगिसंघं निजघान तत्स्फुटं
चतुर्थवेदाध्ययनीति कोऽप्यवक् ॥१३॥

परं नचैतत्कृतधीविचारणा-
निशाणकोणच्छुरणेच्छु वाङ्मुखम् ॥
यतोऽमुना स्पष्टमटङ्कि कोटिभिः
शरेऽपि वाणेऽपि शिलीमुखोद्गतिः ॥१४॥

शरेऽपि वाणेऽपि शिलीमुखोऽत्रयत्
न मूर्खता साहसिकत्व मस्य तत् ॥
प्रभावशाली मनुते च रंहसां
विभूषणं स्वं पुनरुक्तिदूषणम् ॥१५॥

कुतोऽप्यनुत्तीर्ण मिमं पटुं वटुं
त्वमङ्ग ! वेले ! शृणु माऽवधीरय ॥
यथेच्छपृच्छामकरीकराकरा-
तरीतरा सूरिपरीक्षिकाऽऽपगा ॥१६॥

सरोवरेऽस्मिन्भुवनाभिनन्दिते
श्रियाऽभिरामे च जनैकजीवने ॥
सितांशुमूर्तिप्रभकीर्तिलाञ्छनं
वियोगकालोऽजनि कालशैवलम् ॥१७॥

विभुत्वनित्यत्वगुणेन यः स्वयं
प्रबन्धता मेति जनस्य, तस्यभोः ॥
त्रिलोकपालाधिकधामधारिणः
स्तुते र्न मिथ्या विलसद्गिरां गिरः ॥१८॥

गतो जडानामपि कर्णिकास्पदं
शिरोभृशंधूनयतीह योऽस्य सः ॥
रसान्धिरन्मे हृदि मां स्त्रकं क्रिया-
त्कथं न भट्टं गुणगौरवीगणः ॥१९॥

प्रणन्धशीलोऽप्यतिदुःखभावना-
द्भृशं निनिन्दे यदसौ विदेशिभिः ॥
नदोष एषोऽस्त्यमुकस्य किन्तु सा
स्फुटं तदर्धाङ्गविगर्हणाऽर्हणा ॥२०॥

अयं प्रचक्रे कुमुदं मुदं च य-
त्तदस्य वेदान्तनिधेर्न निन्द्यताम् ॥
प्रणम्यता मस्य गति स्त्वियं नवा
वियोगिनो योगितयेद्दयते यया ॥२१॥

अनेन दात्रा दृढयोगमोदयो-
र्न मानिनी किं नमिता स्वपादयोः ॥
न योगिनी किं रचिता वियोगिनी
न मुद्वती किं विहिता कुमुद्वती ॥२२॥

स्वरुक्कुलीनः, कमलस्व कारणं,
विजेतु मत्यन्तु विशेषणं हिमः ॥
विधुं वुधं वेधस मम्वुधिमंधु-
र्धावघो गन्धविध.विधोरणिः ॥२३॥

शरोत्करोत्कं कलिकाकुलाकुलं
वसन्तकालं सृजता जगत्सृजा ॥
कृतास्तरङ्गा जनमानसे नवाः
स्मरश्चहापञ्चशरो व्यधायि सः ॥२७॥

द्विजोद्गतत्वादिगुणाश्रयं विधि-
र्नमाधवं चेद्वनौ व्यधास्यत ॥
करालकालालघुदुःखदुःखिता
जनी किमालम्ब्या दिनान्यनेष्यत ॥२८॥

विकीर्या चक्रे निडहस्तमश्छटा-
ममेरिकायां यदनेन तामसी ॥
अदर्शि सा स्पष्टगुणेन भारती-
रसारसोद्भासितवास्तुवस्तुभिः ॥२९॥

नितम्बभाजा मतिवक्रचेतसा-
मसौ क्षमायां बहुनैपुनीक्षणः ॥
निजप्रभावास्त्वत एव पप्रथे
विमानविद्यस्त्विव जर्मनीजनः ॥३०॥

अनेन नेत्रा चलनेत्रपङ्कजं
प्रफुल्लभूति भ्रु कुटीलतान्तरे ॥
नितम्बिनीमानसमानतुन्दिमा
त्वनेन निन्ये चिरजो यमालयम् ॥३१॥

अनेन दृष्टान्त मभीप्सुनाऽऽत्मनो-
भृशं प्रजाऽरञ्जिनिकुञ्जमञ्जुना ॥
इयं पराऽसावपरेति पक्षतो
न जातिसंवे च विचारणाऽरचि ॥३२॥

अमुष्य मासस्य सुखैकगोस्पदं
मुदब्धिकल्लोलविलोलचेतसा ॥
समेन मेने मनुजेन जैनिना
जनी-द्विरायान-दिनोपमं दिनम् ॥३३॥

मनोहरं प्रेमकरं सुधारव्या
ववर्षु रस्मिन्मुदिरा नवामृतम् ॥
विलोलनेत्रा यदचिन्त्यवैभवं
चिरेण केदारगणा न संपपुः ॥३४॥

विहारपद्वी धृतरम्यकुण्डला
भुजङ्गसंसन्नकुलस्य वैरिणी ॥
वितन्वती भोगसुखं क्षणे क्षणे
क्षणेक्षणेयं बहुधावनेऽजनि ॥३५॥

निजप्रियायाः शवरेण पादयो-
र्न्यधायि यो नूतनकंसहंसकः ॥
व्यधायि तेनैव रसौघवर्षिणाऽ-
तिचिक्कणं पाकणसङ्घयां गुणि ॥३६॥

गृहीतहस्तः शिवयाऽपि पत्परां
श्रियं प्रत्यग्राह वने वसन्शिवः ॥
जगत्त्रयीकेशवमानिताऽमुना
शिवेन नूनं तदकारि साहसम् ॥३७॥

द्विजाति-संपेटक-चक्रवर्तिनां
भृशं दिनन्त्यां कुमुदेन निश्यपि ॥
तनोतु देशे सुखवास मात्मनः
क कौशिकानां गृहिणी तमोमनाः ॥३८॥

वसन्ति मासे सुरभौ गृहाद्बहि-
र्जना घना नैव रुणध्मि तानहम् ॥
परं नियुञ्जेऽथ वदन्तु ते नवाः
स्वगात्रमात्रेण वसन्ति वा नवा ॥३९॥

न्यषेधिमागा इति सत्कलैर्वनेऽ-
भिसारिका सारिकया कयाऽपिया ॥
सशंस साहे वनजाक्षि ! मानवे
नवेद किं त्वं सखि ! जीवनं वनम् ॥४०॥

अकारि यत्कामिजनाय कामिनी-
जनेन त्रिदन्नं चलचक्षुरीक्षणम् ॥
अपायि तत्किं मदिरारसोऽमृर्स-
न्यपाति वा मोहन मस्त्र मद्भुतम् ॥४१॥

अदायि यन्मित्रजनेन मित्रता-
रसेन ताम्बूल मरं मनोहरम् ॥
अमुष्य राग: प्रससर्प सत्वरं
पुरान्तरङ्गे पुन रोष्ठपल्लवे ॥४२॥

सरोजजन्योज्ज्वलरेणुरूषिता:
सिता: स्वभावेन च शुभ्रवाससः ॥
विनिर्ग्यिरेऽभीष्टपदानि शर्मणा
दिनेऽपि चम्पावनयाऽनयाऽनया: ॥४३॥

स्वभावभासा शशिनो मनोहरा:
समुल्लसत्कैरविणीवना: पुन: ॥
मधो स्त्रियामा स्ततिभिर्वियोगिनां
कथञ्चिदेता गमयांबुभूविरे ॥४४॥

वसन्तमासेमधुरेऽपिं रायसी
सतीवरेजे विशदाम्बरप्रभा ॥
शरद्भवाम्भोधरभाविडम्बिभि-
रसेम्बलीचेम्बरमेम्बराम्बरै: ॥४५॥

कृतादरा लण्डनराजमण्डलैः
स्वमुद्रिकासप्तसमुद्रमुद्रिणी ॥
वसूनि सूते विशदानि दानिनी
गवर्नराधिष्ठितरायसीवृषी ॥४६॥

लालेऽभिषेणयति सैन्यपदाभिघातै-
रुद्धूतधूलिपटलै र्जनितेऽन्धकारे ॥
कोकै ररोदि मुमुदे व्यभिचारिणीभिः
श्यालै रगायिषत मङ्गलगीतकानि ॥४७॥

धर्मेऽपिशर्मसचिवै र्निजदिव्यजल्पैः
सौरम्यसाम्यकुसुमै र्जनिते वसन्ते ॥
नित्या अपि क्षणिकता मुपसेदिवांसो-
मम्लु र्नितान्ततनवः सखि ! जाति वादाः ॥४८॥

इमंकोशं लब्ध्वा चिरगलितगर्वा खनिततिः
सगर्वाः संजाता व्ययितविभवौघा नृपतयः ॥
वयं छात्रा मात्राचिररहितगात्रा अपिवसु-
सुपात्राणां यात्रा मतिविशदभावा विभ्रमहे ॥४९॥

अयं मासः पूज्यः कुसुमचपचर्य्या तिथिरियं
यदस्मिँस्त्वंभूमिं गरयसि गृहीत्वा निजजनुः ।।
विचित्रोजातस्त्वं नयनततिपीतोऽपियुवकैः
कटाक्षै र्वामाना मसितसितरक्तै: शबालितः ।।५०।।

शचीरूपां सिंहीप्रतिभटगुणालीभृततनू-
मिमां लक्ष्मींलब्ध्वा विबुधसदसि त्वं वरतरः ।।
यशो विन्दन्भिन्दन्नरिमवनिभोगाननुभव-
न्प्रसिद्धिं प्राप्तासि प्रथितबलहारी हरिरिव ।।५१।।

मुदांधाता पाता भवजलधियाताकुलधियां
भियांभेदी छेदी रिपुजननिषेधी विभवदः ।।
स्वतन्त्रत्वास्से स्तवगुणविमुग्धान्स्तवहृदः
सुतीर्थाऽस्मान्प्राप्ता मव नवपयोदाब्दुततनो । ।।५२।।

षष्टिकत्वमिदमायुरान्हिकं
जीवतात्तवधराऽत्तरावधि ।।
षष्टिकान्नलभनादुदश्रुभिः
स्मर्य्यतां च मनुजैः शरत्स्वपि ।।५३।।

व्याख्यायियेन ललितैः पद्संविधानै-
र्हालायुधं कविरहस्य मलौकिकाभम् ॥
तेनाऽयमुद्रुचि जयेन कृते निबन्धे
सर्गः समाप रचनाचतुरस्तुरीयः ॥५४॥

इतिश्री महाकवि जयप्रणीते ज्वाहरवसन्तसाम्राज्ये
नाम महाकाव्ये मलयानिलवर्णनं नाम
चतुर्थः सर्गः

॥ पञ्चमः सर्गः ॥

अथोद्भिदामद्भुतकुञ्जपुञ्जैः
श्यामायमानामटवीं विभाव्य
वाग्भिः प्रसादोज्ज्वलकान्तिभाग्भिः
चक्रुः प्रबोधं चतुरा भ्रमर्य्यः ॥१॥

द्विरेफचक्षुः कमाननं ते
मा म्लापताद्भोः कदलीकलोरु ! ॥
विमुक्तपत्राः सहकारिणस्ते
द्वारिस्थिताः सन्ति वसन्त उन्तः ॥२॥

येषां वियोगानलदाहभाञ्जि
दुःखै रहानि द्विगुणीकृतानि ॥
समुक्तभावक्तविलोकनोक्ताः
समागता स्ते सखि ! ते सखायः ॥३॥

माकन्दगन्धा न मरन्दमन्दा
न भङ्गभृङ्गः स मरन्दकोऽपि ॥
अनङ्गरङ्गाङ्गणसङ्गभङ्गां
न रिङ्गणां सङ्गिरतेस्मसोऽपि ॥४॥

रामायते नम्रतयाऽघचम्पा
चम्पायते कम्रतया च पम्पा ॥
पम्पायते जाज्यागुणेन हेला
हेलायते वेल्लनयाऽपि वेला ॥५॥

वसन्तवेलेव वसन्तहेला
वसन्तहेलेव वसन्तवेला ॥
अन्योन्य मन्योपमितिर्नवेति
विचारणां मानधनं न वेत्ति ॥६॥

रसालसालोज्ज्वलगन्धगन्धा
वसन्तवेलेय वसन्तवेला ॥
सच्चित्तचित्तेषु च तानि तानि
चमत्कृतानीत्र चमत्कृतानि ॥७॥

इयं विमानै रपि भूरिमानै-
र्विराजमानै रपि राजमानैः ॥
विभाति वेला रमणीयपद्मैः
पद्मैर्यथा ज्वाहरलालकीर्तिः ॥८॥

विधि निंदाघप्रमुखान्कराला-
न्विधाय काला नतिदुःखमालान् ॥
पुण्यप्रसङ्गे समयं विशङ्के
चकार कारुण्यवशो वसन्तम् ॥९॥

धृते तुलाया मिव जन्मभाजां
तुलां भजेने भुवि पुण्यपापे ॥
पुण्यक्षयादेव भवेत्तदापि
सता मयः स्यात्समयः कुतः स्यात् ॥१०॥

अनेन श चापलता वनीनां
समूल मुन्मूल्य परैरि दूरे ॥
किं कामुकानां हृदयं न पञ्च-
चापेन सा चापभृतां न चाप ॥११॥

विशिष्टशाखाभि रुपप्लुतोऽयं
वैशाखमासं जनयांबभूव ॥
शाखासु तास्वेव विचित्रतान्धिं
गतासु चैत्रं बहुचित्रपत्रैः ॥१२॥

विहाय सर्वं सुमनः समूहं
समातिशायी भुविमाधवोऽयम् ॥
निषेव्यतेऽनेकगुणानुरागा-
न्सदा सुपर्णेन रसारुहेण ॥१३॥

अन्वर्थभाजः प्रविभाव्यतापा-
स्काष्ठा निदाघेन करिष्यमाणाः ॥
अयं प्रवालै र्हरितोऽधिकुर्व-
न्न रक्षयामास न गूढमाशाः ॥१४॥

तमिन्द्र माहूय तदप्सरोभि-
र्धरातलेऽस्मिन्लह रम्भया न ॥
गुणाधिभावेन चिरं चकार
नाकं न साकं किमसौ वसन्तः ॥१५॥

समुल्लसत्याकिमदाडिमौको-
विकासितारण्यतला लसन्ति ॥
वियोगभाजः कवलं विधातुं
यमस्य दन्ता इव भूदिगन्ताः ॥१६॥

नित्यं नितान्तं बहुवल्लिशोभि
श्यामाभ माभासितचित्तरङ्गम् ॥
दिगन्तरालं विलसत्तमालं
दृशोजिहासन्ति न नेदृशाणाम् ॥१७॥

उदग्रीव मालोकय लोहिताक्षि !
क्षणं च नेत्रोत्सव एष तेऽस्तु ॥
इमाः समस्ताः ककुभः प्रसन्ना
भवन्ति मुग्धे ! ककुभप्रसत्या ॥१८॥

प्रवालयुक्त्वं विधुवं निहंसि
शिलीमुखानां निकरेण यन्माम् ॥
भक्षाशु तत्वं विहिता मया ते
कदर्थता हन्त कदा कदम्ब ! ॥१९॥

योषा इवेमाः ककुभः प्रसन्ना
विषण्णभावं विजहत्यलीकम् ॥
आङ्काररम्या नय मन्तिकस्थ
स्तनोति चाढूनिव विड्गवर्गः ॥२०॥

प्राप्ता मुधैव चपया मुनिभ्यः
शक्तिग्रहं व्याकरणा न्द्रणन्ति ॥
याऽशोकवृक्षस्य सशोककारे
शक्ति र्न साऽनेन यतो न्यवेदि ॥२१॥

न लाति पत्मात्कुशलः कुशं च
बुधेन तस्या दनुमेय मेवम् ॥
लोकानुसारिप्रथया विहारि
शक्तिग्रहे व्याकरणं न साधु ॥२२॥

शक्तिग्रहं व्याकरणेति गुम्फो-
प्यलं न मूढा भवदीयबिद्धयै ।
यदाप्तवाक्या दपि पूर्वरूपं
व्यवाहरद् व्याकरणाभर्कस्य ॥२३॥

तमः कदम्बै मधुनाऽतिगाढैः
सनाथ्यते हन्त तुरुष्कदेशे ॥
विनोददानाय समा समाना
तुरुष्कभाषा मवनी वनी वा ॥२४॥

पीतं जलं नैव सुधा न पीता
पीतानि नो वारिदमण्डलानि ।
लोकेन विस्फारितलोचनेन
पीता हरिद्राऽपितु वास्तवेन ॥२५॥

जहीहि कालुष्य मिहि प्रसादं
व्रजन्ति मोदस्य दिनानिबाले ! ॥
इति प्रियायाः श्रवणे सुनोति
चटूनि झाङ्कारशुभानि विड्गः ॥२६॥

पुराऽन्यसङ्गेन वियोगजातै-
दुःखै रनन्ता विहिता ह्यनन्ता ॥
समागतेऽस्मिन्सुरभौ तु सैव
सुखै रनन्ता विहिता ह्यनन्ता ॥२७॥

जगत्स्वथामोदभृतं किमस्ति
यदार्थजातेष्विति लोकपृष्टाः ॥
वागिङ्गिताभ्यां कवयो वसन्त-
वेलां च वालां च भृशं मृशन्ति ॥२८॥

स्तवीति नित्यं मुखराननः स-
न्न केवलं त्वां भुवि निर्जरौघः ॥
शिरो धुनानः परितोयतोऽयं
जरद्गवो गायति मद्रकाणि ॥२६॥

शक्तोऽपि सर्वाणि जगन्ति जन्तुं
स्वपादचरेण मुदा मदीयः ॥
भवद्गुणानां गणनाय नायं
युनक्ति शक्तिं कलमोऽलमोघः ॥२६॥

कृते विधात्रा कृतिनां व्यधायि
त्रयीय मुद्धा विदितातु मुद्धा ॥
वसन्तवेला, युवतिर्महेला,
हेलालया सूर्य्यसूतीयमेला ॥३०॥

विभुत्व-नित्यत्व- गुणेन यः स्वयं
प्रबन्धता मेति जनस्य तस्य भोः ॥
त्रिलोक-पालाधिक-धाम-धारिणः
स्तुते न मिथ्या विलसद्गिरां गिरः ॥३१॥

विचित्र सूत्रै वर्हंवृत्तिमृत्तिकै-
रघस्यघस्या घटना घटाय यैः ॥
वसन्त-कार्तस्वर-कुम्भ-सिद्धये
इसोहि तेषां गुणिना मुदासिता ॥३२॥

प्रगल्भ वाचां प्रतिभान-वैभवा-
दकाण्डवृत्तेपि बुधालितोषिणाम् ॥
असौ कवीनां मनसो न शोभते
प्रवृत्तवृत्ते भृशलाघवी गवि ॥३३॥

गतो जडाना मपि कर्णिकास्पदं
शिरोभृशं धूनयतीह योऽस्य सः ॥
रसा न्क्षिपन्मे हृदि मां स्विकांक्रियात्
कथं न भट्टीं गुण-गोरवी-गणः ॥३४॥

अनेकपद्मो नितरां मधुप्रियोऽ-
जनार्दनो भूरि-भुजङ्ग-मङ्गली ॥
अतो ! मणे ! त्वं त्वमसीति मानसे
न सेव्यतां विष्णुतुलारुगाम्वरम् ॥३५॥

निजाधिकं वीक्ष्यवसमीक्षमाणया
भृशं दृशा सर्वजगज्जगत्पतिः ॥
इमं चिरत्नै रितिहाउन्नद्धया
मधुं क्रुधा पूर्वयुगेऽविदिद्विषे ॥३६॥

ततो रणे स्वस्य हरन्यशः परं
पलायमानो बलभाजनैर्जनैः ॥
उदीरितो माधव ! माधवेत्ययं
तदादि नाम्नैव स माधवोऽभवत् ॥३७॥

त्वमुत्तमाभि र्व्रततीभिरावृतो
मनोरमैः पुष्परसैश्च माद्विकैः ॥
गुणोज्ज्वल स्तद्धितवृत्तिविग्रहः
कृतार्थनामाऽसि जनेषु माधव ! ॥३८॥

मरन्दधारा मधुरा स्पृहो मरु-
दनुष्णशीताः समयाः सितादिशः ॥
असा वृतूना मुपरि स्फुरत्कला
यथार्थिका ते ऋतुराज ! राजता ॥३६॥

स्थिता विहाराय भवादृशां दिशो-
दशाऽपि कल्याणदशा मिहाऽवनौ ॥
ऋतु स्त्वपूर्वोऽय मिति प्रजरेणा
विचारणीयाऽस्तु सखेऽस्मदादिभिः ॥४०॥

विभूतये भूतल-चक्र-वर्तिन-
स्तवाङ्ग वङ्गादिगति र्न निन्घते ॥
सरोज-नाराच-रयेण चक्रिता-
मभीप्सतः प्रत्युत साऽभि नन्घते ॥४१॥

यत स्त्वया माधव ! पेशलैः केले-
र्द्विजाति रेषा सकला प्रसन्दिता ॥
अतस्तवेयं शुचिकीर्ति रञ्चते
समस्त-दिक्या-रथ-चक्र-चङ्क्रमान् ॥४२॥

इहावनौ भूरिवसन्ति कीचकाः
श्रणोऽपि कर्णेन किमर्जुनाग्रज ! ॥
इमे जडा दूषयितुं स्वघट्टतः
पुरायतन्ते द्रुपदात्मजाच्छविम् ॥४३॥

सखे समेषां प्रतिकूलचेतसां
प्रतीपचेतासि तथाऽनुकूलय ॥
यथा हितस्याऽत्र न कापि ते भवे-
त्स्मरस्य साम्राज्यपदेऽङ्गविक्रिया ॥४४॥

यथा यथा त्वं भरसे रसेन न-
स्तथा तथा त्वां भरताद्व्रतावलिः ॥
चिरं चिरण्टीजन-चक्षुरीक्षितः
क्षितिक्षितिं क्षालय मारमारव ॥४५॥

सुचैत्र ! चैत्रे रसिकोऽसिकोणधीः !
सखे ! सखेदो भव माऽसि मासि चेत् ॥
प्रजासृजाऽदः प्रहितं हितं गृहं
गृहाण हूणाप्सरसां रसाञ्चितम् ॥४६॥

न कश्चिदालोकयसे भवद्वला-
त्सदोपमेया अपि सांप्रतं गुणाः ॥
निजोयमानानि विवृद्धगौरवा
जयन्ति लक्ष्मीकणकोणभात्रतः ॥४७॥

विद्धुव्यन्नध्वा मदनस्य माधवे
द्रुतं द्रवन्मानस मन्हि वन्हितः ॥
गलद्गलान्तं जनहृदिकामट-
द्वभार भारप्रतुलां त्रपां त्रपु ॥४८॥

विलोक्य कायेष्वतिकामनीयकं
विलासिनीनां निजजित्वरं त्वरि ॥
मुहुर्मुहु स्तप्तहुताशने विश-
त्तपस्यया जेतु मियेष काञ्चनम् ॥४९॥

जितं स्व मालोच्य चिरप्रभैः प्रभा-
च्चरोच्सु रामेत्तणरामणीयकैः ॥
स्वकण्ठदघ्ने विनिपत्य वारिजं
निमन्तपाभास जले कलेवरम् ॥५०॥

स्वजिष्णु विष्णुप्रभविष्णुधृष्णुभि-
र्गलस्य लावण्य मवेद्य कम्बुभिः ॥
निपत्य वृद्ध्यै लवणोदधौ दधे
दधिप्रभै स्तुङ्ग-तरङ्ग-लाघवी ॥५१॥

निशम्य जङ्घे जयिके च या विले-
र्दलैः कदल्या विहितात्मनन्दना ॥
हरिन्मणि-श्यामल-चीर-चित्रयोः
पुरोऽनयोः साऽजनिभूरिनिन्दना ।५२॥

मृणाल माकर्ण्य भुजानुकारिणं
स्वजानुमध्ये विनिवेश्य वर्णिनः ॥
तथा ददंशु र्दशनै र्यथोदरे
वृकोदरेणाऽपि दरेण वीक्षितम् ॥५३॥

जहाति नाऽद्यापि नसस्तुलाम्यं
निखातपादोऽपि भुवस्तले तिलः ॥
इतीव रोषा न्मुसलै रुलूखले
व्यमर्दि चाचर्वि पुरैव पूरुषैः ॥५४॥

जनीङ्गितै रेव विचिक्तनिर्णयै-
र्विबुध्य सर्वं चरितार्थं मर्थिनः ॥
समेऽपि शब्दाः कुपिता विहाय गां
विहायसि श्येनजवेन डिडियरे ॥५५॥

व्रजन्त आरा द्विजयूथनोदिता
वधू-मुखालोकन-रूढ-मन्युना ॥
विहाय एवास्तु निवासभूरिति
निशाध्वनाऽप्यनुमोदिता अमी ॥५६॥

मुखाय पद्मान्निजकान्तिकन्तुने
निरीक्ष्य भिड्ग-स्वन-गालि-गल्लकान् ॥
अदायि दण्डो ननु जीवनावधिः
प्रजासृजैवाऽमलचित्तवृत्तिना ॥५७॥

अनन्त-बल-मञ्जुला मम विशालभुग्गह्वरे
सहस्र-रसनाततिर्यदि भवेत्त्रयीधारणा ॥
तदाहमपि शक्नुयां विधुत-कायमुक्ताक्षराः
वमस्ततिनिसेवितुं जगति माधवीः संपदः ॥५८॥

इति स्तुवाना भ्रमरी वसन्तं
निमज्जयामास मुदां पयोधौ ॥
कपोल-पाली-धृत-पाणि-पद्मं
कदम्बकं श्रोतृजनावलीनाम् ॥५९॥

निशम्य रम्यां गिरमेतदीयां
रमेत को नाम न कायधारी ॥
धुन्वँल्ललाटं शुभपुष्पवाटं
भेजे मुदं येन स मुक्तकोऽपि ॥६०॥

ववु रथ मधुमत्ताः शीकरा वन्यवाता
द्रुमतति रभिनम्रा पुष्पवृष्टिं प्रतेने ॥
प्रतिवनभुवि चक्रे कामिनां चक्रवालं
कुसुम-शर-हताङ्गं मन्मथेक्ता मटाट्याम् ॥६१॥

काव्यप्रकाश मधिगम्य नितान्तगूढं
योऽध्यैत मग्नमनसा फणिवाग्विभूतिम् ॥
तेनाऽस्य मुद्रुचि जयेन कृते निबन्धे
सर्गः समाप कविहारिणि पञ्चमोऽयम् ॥८२॥

इतिश्री महाकविजयप्रणीते जवाहरवसन्तसाम्राज्ये
नाम महाकाव्ये भ्रमरीगानवर्णनं नाम
पञ्चमः सर्गः ।

॥ षष्ठः सर्गः ॥

अथ प्रमाथी स्वसहायताकरं
समीक्ष्य मित्रं मतिघस्मरः स्मरः ॥
प्रसूनधन्वा भ्रमरालि सद्गुणो-
ववर्ष वाणं प्रतिमानवं नवम् ॥१॥

तदैव तै र्दैवधियोऽप्यनारतं
रताभिलाषाः प्रविशीर्णमर्मकाः ॥
स्वभावतो व्यञ्जनमञ्जुभोजना
जना स्तदन्योन्य मलापन्निति ॥२॥

सद्यं वसन्तनृपते मधुपा निकुञ्जे
गुञ्जन्ति मञ्जुनि वने सखि ! वञ्जुलानाम् ॥
वाता विभान्ति शिशिरा: शुचिचन्दनानि
राजन्ति शीतलदलानि च पल्लवानि ॥३॥

एतत्प्रकाशत गहनं गहनं तमालैः
सुस्निग्धराजिखगराजितशस्तमालै: ॥
वाले ! प्रदेश इरदाभिपतल्लवोऽयं
प्रत्यग्रजन्मशुचिपल्लवपेलवोऽयम् ॥४॥

एलालवङ्गकर्पूर-सुपूरिता वै
प्रत्यक्ष मेव महते रमणीयवाणी ॥
एनां निपीय मधुरे ! द्रुतमत्र जाता-
स्तृष्णाधिकात्वदमृताभकथाकदम्बे ॥५॥

वन्यस्थलेऽत्र कणितान्ययि ! कङ्कणानां
वाले ! बलेन रणितानि च नूपुराणाम् ॥
उच्चोच्चमर्मररवा: द्विजकूजद्ध्या:
सद्यो विशालजघने ! ननु गोपयन्ति ॥६॥

सौ हेममञ्जुलमृणालमृदू भुजौ सा
लालित्यलालनपरा वचसां प्रणाली ॥
ते भृङ्गभङ्गुरगुरुभ्रमणे श्रुतौ, सा
संसारसाररचना मचनालकश्री: ॥७॥

तत्कञ्चुकामकुचकाञ्चनकुम्भचक्रं,
वक्रं तदुल्लसनजहृसगतं गतं च ॥
एतानि तानि च विलोचनवेल्लनानि
खिदन्ति मां स्मृतिगतान्यपि किं करोमि ॥८॥

संकेतविशेन लसत्सुवर्णा
सुवर्णमार्गाहितमानसेन ॥
न काऽपि शङ्का भवताऽत्र कार्या
सखी ममेयं प्रतिवेशिभार्या ॥९॥

धम्मिल्ल मल्ली मवलोक्य वल्ली-
तनोऽ ! भिमानं वितनो: समालम् ॥
ममार रम्येदशनं पूर:
कुमारहर्म्ये किमयं मयूर: ॥१०॥

कृताऽस्मि वारां मरणाय माया-
द्रुटस्य घाटस्य च पिच्छिलत्वात् ॥
त्वय्यम्बि भग्नश्चय सत्यमाली-
वचः प्रतीह्यम्ब ! न देहि गालीः ॥११॥

खलेन वातेन हठाच्छिरस्तः
च्युतं धरित्रीपतनान्ममालि ! ॥
वासो दधे धूसरभाव मेत-
न्न पृच्छनीयः सखि ! सोऽत्रमाली ॥१२॥

सभृङ्ग मब्जं, चपले ! विजिघ्र मा
शतै रिति त्वं कथिताऽपि मुग्धधीः ॥
तदब्ज मग्राः व्रणिताधरे ! ऽधुना
सहस्व पत्युः करतर्जना इमाः ॥१३॥

विशाल मप्येभिरये ! स्वमंशुकै-
र्यथा पुरा तत्र वने न्यगुह्वहि ॥
तथैव कान्तार इहाऽपि युज्यते
निगूहितुं भृङ्गगणेन खेदिते ! ॥१४॥

अनारतं नः कलिकावलम्बिनां
कदाऽपि न स्पर्शनदर्शनादि ते ॥
इहत्यकासारनिधा जडात्मना
वयं यदि स्याम सखे ! तथाऽपि शम् ॥१५॥

अयं द्विजानाधिपः कलानिधि-
र्भृशं दृशाऽऽच्छादयते तवाननम् ॥
त्वमप्यमुं छादय दृष्टिकोरिके !
चकोरिके ! चञ्चललोचनाञ्चलैः ॥१६॥

लवङ्गिके ! मार्गदिहि प्ररुन्धिवा-
र्निवारय क्रोध मलं मलीमसैः ॥
कुरु प्रसद्य द्रवतां गतं मनः
शिवायते सन्तु चकायवायत्रः ॥१७॥

अगुरुत्वभावेन गतोऽपि शुष्कतां
वियोगदुःखेन विपल्लवोऽप्ययम् ॥
निषिच्यमानो नयनाम्बुधारया
सहस्रधा रोहति रोहणीसखि ! ॥१८॥

कुतोक्तिसूक्तिप्रकरे दरादरा-
द्वितीर्णकर्णाभरणे रणेश्वरे ॥
नतेन मूर्ध्ना पदपद्मवन्दिनि
न शोभते मानिनि मान एष ते ॥१९॥

इतीरिता रीतिजुषा वयस्यया
समस्यया पूरितभावगह्वरम् ॥
यदीरयामास न नो तदीरिति
विलिख्यमानेन भुवस्तलेन किम् ॥२०॥

चमत्कृतिं कामपि वीक्ष्य लोचने
चनेरणाऽकारि विटेन याऽऽनने ॥
ननेति सा स्पष्ट मबुद्ध कोविदा
स्वपर्णशालां चणवप्रसंभवाम् ॥२१॥

गता मदीया हरिणी रणाङ्गणे
सदन्तराररणविदारिणी रुजाम् ॥
तदादि रात्रिन्दिव मश्रुवर्षिणी
न मुञ्चते मां क्षणमप्य धीरता ॥२२॥

गता मदीया सुदती सुरालये
न शान्ति मीते विदतोऽपि मे मनः ॥
विमार्गयाम्यन्ध इव निशं निशि
वियोगदुःखान्नितरां विलुप्तधीः ॥२३॥

इति द्वयी द्वैतमनोऽपहारिणी
अदीव रेजे सुहृदः श्रुतिं गता ॥
प्रवर्तयन्ती हृदयावतीद्रवां
पदे पदेऽसौ करुणारसापगाम् ॥२४॥

अमन्थरं मन्मथमन्थिताशयं
त्वमन्यथा मामयि ! माऽथ मन्यथाः ॥
अमन्द मानन्दथुर्दाष्टिवृष्टिभि-
स्त्वयेव बाले ! सुखभाजनं जनः ॥२५॥

नमेरुमरुता रुतालिसहिता
हिताब्जमुकुलैः कुलैः खपतताम् ॥
श्रुताऽतिसुहृदो हृदीऽभिलषिता-
ऽसिता सुजघने ! घनेयमटवी ॥२६॥

असौ च निविडा विडालवसतिः
सती न वितना ततोऽपि कमलैः ॥
द्विजालिवलिता लखनिता
चिताद्वि ! रुचिराचिराय तदियम् ॥२७॥

लसति सति सितेऽम्बुदेऽम्बुलेशे
सकलकलाबुधया वनं गताल्या ॥
विकसितवदना बभूव सुभ्रूः
कदलिवनी मवलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥२८॥

सद्वंशा सरलतराऽऽस सुन्दरी मे
सा भ्रष्टा मम करतोऽतिमन्दभाग्यात् ॥
सद्वर्णा सकलकलां च तां मनोता-
मन्वेष्टुं चिरविरहाकुलो भ्रमामि ॥२९॥

भ्रमरहितो गुणसहितो लोके
कस्मै नरो नरांचेत ॥
तव सखि ! धत्तेऽभिलाषो
मम मुग्धे माधवे वासः ॥३०॥

अत्याश्चर्यं पदियं कुमुदं
दधते चिरेण सरसेऽपि ॥
किमु सखि ! साद्यविशाला
बुद्धवती, सारसी शाला ॥३१॥

पदपदभाजो द्विजकान्
शरणं ददते कुलीनाऽपि ॥
किं व्यभिचरेत्कुलीना
नहि नहि सखि ! वैरुधी गाथा ॥३२॥

वासो मलिनति रभसा-
त्सर्वामपि दुःखदं कुरुते ॥
किमु सखि ! मधुपः कश्चित्
ओमालि ! भृङ्गकालोऽयम् ॥३३॥

कालः कलुषति लोका-
नालोकयसे किमद्वितो रुदे ! ॥
पश्याम्यखिलमुथैत-
त्कालः किल नीलपर्यायिः ॥३४॥

सर्वः सरोजमासि
प्रमदालिङ्गिततनु र्भाति ॥
आजन्म विरहभाजां
सुहृद स्माकं कुहप्रमदा ॥३५॥

दत्वा दर्शन मात्मनः करशरे प्राणप्रिये प्रेयसी-
चक्षुर्वीक्षणदक्षदृष्टिकलिके संसर्पति द्वारतः ॥
विज्ञां वीक्ष्य समक्षदेशपतितां श्वश्रूं स्वतः कोपना-
मप्पूर्णं चघटंपरो चलदृशा शेफालिकांवालिका ॥३६॥

स्वामी ते परदेशबद्धधिषण स्ताते मृते सत्यसौ
वृद्धा चान्धतरा तथाऽतिबधिरा श्वश्रूरियं तावकी ॥
त्वं मुग्धा निलयश्च वस्तुबहुल स्तस्माद्ददाम्यञ्जलिं
कृत्वापान्थ मिमं कृशोदरि! गृहेमारक्ष मारक्षहे ॥३७॥

स्निग्धच्छायमहीरुहे निशितया सूच्याऽप्यभेद्येवने
योग्यायोग्य मपीहतन्वि ! मधुपाः पुष्पौघमाभुञ्जते ॥
निष्पुष्पाप्यसि चारुमारुतमुखी त्वं षिड्गसंघप्रिये
जम्बूकुञ्जगृहे प्रविश्य रभसा द्राप्याः यथा सर्प हे ॥३८

संकेतार्थिन मागतं रतिमति श्रुत्वा विदग्धाप्रिया
श्वश्रूं कीलितलोचनाञ्चलवत्ता वालेत्थ मालीलपत् ॥
आर्ये ! कार्य्य-विचार-बुद्धि विभवाहन्ता च मञ्चप्रिंश्रो:
दुष्टो दृष्टिहरो गमिष्यतिकदा रात्र्यन्धरोगस्तव ॥३९॥

रसाल मञ्जरी रम्या
मञ्जुला वन वञ्जुलाः ॥
मार-नाराच- दग्धाङ्गी
किं करोनु तपस्विनी ॥४०॥

वियोगसागरे मग्नां
चन्दनादि सुगन्धवान् ॥
तां भस्मी कुरुते हन्त
शीतोऽपि मलयानिलः ॥४१॥

अस्या असह्य विरहानलतापतञ्ञा-
दङ्गानि सङ्गिनि गते विकलीभवन्ति ॥
बिम्बेऽस्त मीयुषि विकासनदायरश्मे-
रस्मेर मम्बरमणेरिव पङ्कजानि ॥४२॥

कृत्वा तां भुवनत्रयीपरमणीमूर्गाभिषिक्तां सितां
सर्वाङ्गे रचितस्थितिप्रथिमभिर्द्रव्यैः शुभैः कोमलैः ॥
वल्ली, साल, तिनेज फाल, कदलो, नारङ्ग, नीलोत्पल
द्राक्षादाडिमबिम्बनिम्बु घटनेऽप्यर्थोविधातुःश्रमः ॥४३॥

धम्मिल्ल मतल्लिके क्षणा
दर्पं मा विभगाल्पजल्पने ! ॥
इर्ष्ये किमु मे पिकस्वरः
कस्वर-पिच्छभ-पिच्छिको मृगः ॥४४॥

वयं विधात्रा रचिता कुभाग्यतः
सुगोत्रसारा अवज्ञाहि नामतः ॥
अतस्त्वमस्मानतिशम्यविग्रहः
कुरङ्गकृत्या नहि वञ्चितुं क्षमः ॥४५॥

विधाय नृन्भोजनपाणिना विधि-
र्व्यधत्त चास्मान्खलु वामपाणिना ॥
ततोऽवशा हन्त वयं धरामहे
महेन्द्र-चाप-धुति-शोभि-वामताम् ॥४६॥

मुखोऽयं बाहुलता, तनुश्च्छांत्र-
करोऽपि सौवर्ण-घट द्वयां-घरम् ॥
अमूदृशः स्म स्तत एव नो बला-
दमुद्र-संसार-समुद्र-मज्जना ॥४७॥

इति निशम्य वचः परमादरै-
र्मुदुदधौ निपपात विटावलिः ॥
यदपि हास-रसेन समीरिता
स्तदपि वास्तविकाः खलुता गिरः ॥४८॥

इत्यस्य कामियुगलस्य गलद्गलस्य
वीणाकरः सकल-गान गुणाकरश्च ॥
द्वीपान्तरीय-रमणीजन-संस्तुतानो-
वन्दिव्रजो हृदय-मर्कट माचकर्ष ॥४९॥

यः श्लोकवार्तिक मधीत्य महाप्रयत्ना-
त्कण्ठेचकारहरिवाक्यपदीयखण्डान् ॥
तेनाऽयमुद्गुचि जयेन कृते निबन्धे
सम्पूर्णता मुपगतः खलु षष्ठसर्गः ॥५०॥

इतिश्री महाकवि जयप्रणीते ज्वाहरवसन्तसाम्राज्ये
नाम महाकाव्ये प्रेमालाप वर्णनं नाम
षष्ठःसर्गः ।

ॐ

॥ सप्तमः सर्गः ॥

या माधवीं छवि मवाप्य विचित्रशोभा
नो भार्गवी मपि रुचा गणयन्ति नार्य्यः ॥
तासा महं प्रकृति वर्णन मादरेण
    दिङ्मात्रतो विभणिषु बुधमोदनाय ॥१॥

भूमण्डलस्य तनुयामिह कानिचन्धे
प्रत्येक देश महिलाजनवर्णन चेत् ॥
तद्भारतस्य ललनातति रेव नूनं
ग्रन्थं क्रिया दपरभारतनामधेयम् ॥२॥

यासां सुगन्धिपवनो भुवनान्तराणि
स्वावासितानि कुरुते चरिताम्बुराशेः ॥
तासामघौघहरभारतभामिनीनां
युक्ता कथं स्थिति ररण्यचरीप्रसङ्गे ॥३॥

यस्यास्ति पूर्व समये हरिवर्षसंता
भौगोलिका स्तमधुना निगदन्ति रूसम् ॥
तस्मिन्गतेन मधुना यदकारि चित्रं
तद्वाग्गुरो रपि किलाजनि कौतुकाय ॥४॥

आरूढसत्ति रपुरन्ध्रिपटान्वसाना
सप्त्यन्तराप्तपतिना तरलं भ्रमन्ती ॥
मुग्धस्वभावरतभारतवासिनीनां
यूरोपखण्डललनाऽजनि विस्मयाय ॥५॥

कुर्वन्ति या शिरसि तं बहुटोपटोपं
गोधूमतौषनिकरार्पणगेहदेहम् ॥
चिल्लाख्यखेचरचयोऽस्तिपलायमान-
स्त्रासा मघीशपतलूनविलूनमानः ॥६॥

शुक्लाम्बरा विधृतमौक्तिकशुक्लभूषा
शुक्लाङ्गयष्टि रथ शुक्लवचो गिरन्ती ॥
हूणाङ्गना मधुमदा शकुनीव शुक्ला
शुक्लीचकार सुहसैः ककुभां मुखानि ॥७॥

एषा विहारकरणाय गता वनान्ते
सार्धं धवेन समवेषविभूषणेन ॥
विभ्राजमानहृदया शकुनीव चींचीं
कृत्वा स्मरेण पतिसंनिधि माजगाम ॥८॥

तां संप्रसाद्य परिहासकथाविशेषै-
स्तस्याः शिरः पुनरमण्डय देष पत्रैः ॥
हित्वाऽस्थिपत्त्रदशनादिक मन्यदस्ति
किञ्चिन्न वस्तु रुचिरं विपिनेचरीणाम् ॥९॥

एता श्चरन्ति मृगयां विहरन्ति शैलान्
वेषादिना निजधवान्नविशेषयन्ति ॥
छायाकदम्ब मिव संगयुजः पतीनां
द्वीपान्तराणि परितो नितरां भ्रमन्ति ॥१०॥

गन्धर्ववैधविधिनाऽथ धवान्वृणन्ति
वृत्वा त्यजन्त्यपरुचौ विधवा न काचित् ॥
एताः स्वतन्त्रगमनागमना दरेण
कालान्तरेण बहुभर्तृभुजान्भजन्ति ॥११॥

बिम्बेन केचन परे सुधयाऽधरस्य
साम्यं वदन्ति कवयः कविताविशेषैः ॥
फ्रेञ्चाङ्गना-जनलताऽधर-पल्लवानि
वीक्षण-कुडिन-भवन्मिशरीधाराणि ॥१२॥

रक्ताश्म-रश्मि-ललिताङ्गुलिभूषणेन
रम्या युरोप-रमणी रुरुचे चिराय ॥
हारोऽपि भार इव कर्णिकया न किञ्चि-
द्व्याजरुक्जवनिका खलु मौक्तिकानि ॥१३॥

या पद्मिनी निगदिता खलु कामशास्त्रे
तल्लक्षणं स्फुटतया घटते नलिन्याम् ॥
अद्याऽपि किन्तु धरणी न नितान्तहीना
तत्पद्मिनी-कमल-गन्ध-सकान्ति-गन्धैः ॥१४॥

न्यूयार्कं मर्करुचि मेतु अमेरिकायां
तल्लन्दनं व्रजतु नन्दनतां युरोपे ॥
न्यूयार्क-लन्द-नवनन्दन-प्रौढमाता
विश्वम्भरा जयति भारतकालकाता ॥१५॥

अन्नेषु धातुषु खगेषु पशुव्रजेषु
पुष्पेषु काव्यनिवहेषु च वर्णभूमा ॥
आर्य्यैर्व्यलोकि निखिले हरिवर्षदेशे
क्वापीक्षितो न पुनरत्र स मानवेषु ॥१६॥

एकैव राजति सदा न परा कदाऽपि
यूनां यदेणनयना हरिवर्षजानाम् ॥
तन्नीतिरत्न मथ भारतवासि-शिक्षा-
पाठावली-वलयितोपनिषन्निबन्धः ॥१७॥

आच्छादिताऽऽनखशिखं गुरुचोलकेन
वक्षःस्थितिस्थितविरोकयुगोत्तमेन ॥
संवीक्षिता युवजनैर्यवनी वनीप-
कामप्रदा जगति माघवनी वनीव ॥१८॥

अफ्रीकभूरिय मनल्पजनाकुलोर्वी
विभ्राजते अरबसीमनि दक्षिणस्याम्
अस्या महाद्भुतमवेक्ष्य चलिष्णुचित्तः
श्रद्धां दधाति गरुडोदितवाक्यजाले ॥१९॥

लङ्कापुरे यदिभवेदुदय स्तमोऽरे-
रफ्रीकदेशगहने किल मध्यमन्हः ॥
नैशं मुखं लसति नील ममेरिकायां
तस्मादिदं यमपुरी बलिभूरियं च ॥२०॥

द्वीपो महानय मुदेति भयङ्करश्री-
रुष्ट्रोडुपो जटिलजङ्गलवारिराशिः ॥
अद्यावधि स्थितिभृतोऽभ्रसमस्य तस्य
जङ्गालपान्थयुवकोऽपि न चाप पारम् ॥२१॥

यद्वर्णितं भगवता गरुडेन गुम्फे
नैजे नितान्तशितखड्गजलाभपत्रम् ॥
कान्तारवृन्द मथ यत्र च पापिसंघः
संलम्बमान इति सर्व मिहास्तिवृत्तम् ॥२२॥

वृत्तान्तकोऽय मथ नागफणासमानः
प्राणोपहार मभिवाञ्छति कायभाजाम् ॥
स्त्रीणां विशिष्य मदिरानयनोदराणां
जग्ध्वाऽस्थिमांसरुधिराणि च पुष्टिमेति ॥२३॥

देशान्तरस्य विपिनानि वनानि वास्यु-
रुद्यानकानि किमुतेन्द्रवनच्छटेव ॥
मर्त्यादद्य मसिपर्णतरूपकीर्ण-
मफ्रीकदेशगहनं गहनं विलोक्य ॥२४॥

सर्वां महीं जिगमिषुः खलु माधवोऽसौ
भ्राम्यन्क्रमेणविपिनोपवनानि खेदी ॥
एतादृगुक्तचरकचरभूमिभागा
गत्वा वनी भृशतरं हृदये तताप ॥२५॥

अस्मिन्गतेतु शिवसंवचरणे गुणौघै-
रफ्रीकभूरियमभूदनभूतभावा ॥
यान्संविलोक्य रमणीजनजन्मभाजो-
वैदेशिकोऽपि मुमुदे बहुषिड्गवर्गः ॥२६॥

संधार्य्य शृङ्खल मयोमय मुच्चलन्ती
पादादिशोभि बहुलं परिलम्बमानम् ॥
अफ्रीकदेशयुवति र्मदरक्तचक्षु-
रालानभेदनकरी करिणीव रेजे ॥२७॥

श्यामां प्रशंसति सदा वयसैव निस्व-
मेकेन गौररसिको भरताग्रयायी ॥
अफ्रीकदेशयुवकोऽञ्जनमञ्जु वर्णो-
रूपेण भूषणचयेन वयःश्रिया च ॥२८॥

सौवर्णभूषणविभूषितकायवल्लीं
रामा मवेक्ष्य भरतेजमनोऽभिरामाम् ॥
अफ्रीकजां च निबिडायसभूषणाढ्यां
किं रुच्य मत्र जगतीत्यति संशयालुः ॥२९॥

यस्या ध्वनिं समवधार्य्य निमीलिताक्षः
संजायते भरतजो वनरङ्कलीलः ॥
तामेव वीक्ष्य रसती मसतीं व वीणां
कर्णौ पिधाय किल धावति हूणलोकः ॥३०॥

स्वप्रेयसी प्रकृतितोऽप्यलिनीव नीला
नीलाम्बरा विधृतनीलविभूषणाऽथ ॥
प्राशंसि निर्गल मनर्गल मालपङ्क्ति-
रफ्रीकदेशयुवकै रलिरूपरूपैः ।३१॥

या सत्कपोतनवपोतशिरोधराभा
नीलीनिमज्जिततनूभ्रमरीप्रभा वा ॥
सैवाऽत्र भूमिपटले निखिले नुरांभिः
संगण्यते सुरुचिरा च रुचिच्छटाच ॥३२॥

किं विज्जिका न ललनाकुलमौलिमाला-
संघर्षशाणचरणा सुषमाचणासु ॥
नीलोत्पलच्छविनिकायसुकायधारी
नारी बभूव भरताधिपचर्चितङ्घ्रिः ॥३३॥

यां वीक्ष्य भारतबुधैरखिलै र्विदित्वा
देवीं गिरामसितभां निरचीयतेति ॥
दण्ड्यादयो ननु जगज्जनचाटुवाचो-
नाद्राक्तु रद्भिरिमां विशदां तदोदुः ॥३४॥

द्वीपान्तरीयनृपतिव्रजपट्टराज्ञ्यो-
गौणाख्ययैव महिषीपदवृत्तिभाजः ॥
अफ्रीकभूपमहिलाः खलुः वस्तुतस्तु
योग्याः समीरयितु मात्मगुणै र्महिष्यः ॥३५॥

यः संशयोऽस्य हृदयेऽजनिमुग्धबुद्धे-
राख्यायमानमहिषीपदवाच्यमध्ये ॥
आसां स दैर्घ्यंदढताद्‌भुतकान्तिमन्ति
शृङ्गाणि वीक्ष्य जलविन्दु रिवाशु लिल्ये ॥३६॥

काचित्सखीभिरथ हासरसेषु पृष्टा
कासीति गानकरणी कलकोकिलेव ॥
सा स्पष्ट मुत्तरमदादिव यौवनस्य
मत्ता मदेन मदिरानयना कुहूगीः ॥३७॥

सा तां जगाद सखि ! माहस यद्धसन्तीं
त्वां वीक्ष्य शीतविहतो युवकौघ एषः ॥
अभ्येति साऽपि निरकाशयदात्मजिह्वां
भूरिज्वलज्जवलनदीर्घशिखावलीभाम् ॥३८॥

पश्चादुवाद बहुलोहमयी मनीषा
यादृक् तवैद्धि सखि ! नापरगायनीनाम् ॥
सा प्रत्युवाद सखि ! सत्यमदः परं ते
वाग्यश्रियैव विजिता मय कामनीषा ॥३६॥

श्रुत्वाऽमुकानि परिहासभृतानि वाको-
वाक्यानि भारतजनी नितरां विभाय ॥
एकस्य यद्धसन हेतु भवेत्तदेव
त्याज्यं परस्य यमिनोऽयमिनः सुरेव ॥४०॥

नानापुरन्ध्रिपुरुवर्णितिपीतितुष्टीः
श्रोतुः पलायनपरस्य भृशं गतस्य ॥
आकृष्यमाणतनु रुद्धटपिङ्गजालै-
श्चीनाङ्गनाऽङ्गनत्रताऽजनि बन्धनाय ॥४१॥

चीनं सखे ! प्रियवसन्त ! गमिष्यसित्वं
तत्रस्थितः पणिकरो विदुषां वरेण्यः ॥
तस्मै त्वया निगदता भरतेतिवृत्तं
शार्दूलभपमरणं न कदाऽपि वाच्यम् ॥४२॥

रूसं विलोकय सखे ! विजयादिमूर्ति-
लक्ष्मीप्रभा-पटल-भारत-भासमानम् ॥
स्वस्ते दिशेः परिचयाय कुहाप्यलभ्या-
न्काश्मीर-केशर, सुमानस-दिव्य-पद्मान् ॥४३॥

इत्थं सखे ! निखिलभूतलवर्तितत्तद्
द्वीपस्थितः स्वशगणो भरतस्य वाढम् ॥
प्रद्यत्यवश्य मथ भारतवार्तवार्तां
तस्यान्तरं शिशिरयाऽमृतवर्षिवाग्भिः ॥४४॥

द्विरेफततिलीलया युवकमण्डलीमण्डिते
विचित्ररमणीजनैर्जनितवल्लरीविभ्रमे ॥
स्वतन्त्रभरतेऽधुना निखिलकामनापूरकं
जनस्य निजशासनं प्रतिदिनं वसन्तोत्सवः ॥४५॥

अस्नायियेन विमलेऽम्भसि जन्हुजायाः
कुम्भे पवित्रतनुना क्रतुभूमधूमैः ॥
तेनाऽयमुद्रु चि जयेन कृते निबन्धे
सर्गः समाप्ति मभजच्छुभसप्तमोऽयम् ॥४६॥

इतिश्री महाकवि जयप्रणीते 'ज्वाहरवसन्तसाम्राज्ये'
नाम महाकाव्येऽन्यद्वीपरमणीवर्णनं नाम
सप्तमः सर्गः

ग्रन्थकारः
प० जयराम शास्त्री, साहित्याचार्यः

अथ कवि परिचयः

दत्वा येन जनुः प्रवोधमधुरा प्रीत्या ददे व्याकृतिः
सोऽयं ब्रह्मदजन्मदो ममशिवः सत्यं गुरूणां गुरुः ॥
साहित्यार्णकर्णधारपदवीयोग्यः स्मृतोऽहं यथा
सामे पर्वत वा सिनी भगवती दुर्गाऽपि गुर्वीतरा ॥१॥

इन्द्रोयस्य च सोहरो वलधरो विद्वौ च कृष्णो हरि-
र्यस्मै स्वीकृतवान शिवोऽप्यसुभगां जन्मावली मात्मनः ॥
यस्मा दुद्भवमाप सप्ततनय श्चन्द्रोऽ य मन्धेर्धियां
तेनेदं कविना जयेन रचितं काव्यं गुणै मंञ्जुल ९ ॥२॥

श्रीराजराजोत्कटकोशघोषे
जगत्तले राजति लालराजे ॥
निबन्ध मेलं सुषमासमेतं
समास मेतं विरचय्य राजे ॥३॥

समाप्ति मीते द्विसहस्रवर्षे
श्रीविक्रमार्कस्य जयो ह्योर्ध्वे ॥
अपूपुरच्छ्रवणपूर्णिमायां
दिल्लीपुरे लालनिबन्ध मेतम् ॥४॥

गुलाबरामेण पितामहेन
प्रचुम्बितास्यः शिवरामजन्मा ॥
भूरीसुतः साहबकौरपौत्र-
श्चकार काव्यं जयरामशर्मा ॥५॥

जिलारोहतकप्रान्त-
गोछीग्रामनिवासिना ॥
महामहोपाध्याय श्री-
शिवदत्ताङ्घ्रिरेणुना ॥३॥

ज्वाहरवसन्तसाम्राज्यं
रचितं जयशर्मणा ॥
विलोकयन्तु विद्वांस:
सत्यनिष्ठा स्तपोधना: ॥७॥

इतिश्री लवपुरीय ओरिएन्टलकालेजाधीत संस्कृत-विद्येन, प्रथमश्रेणीप्रथमपदोत्तीर्ण पञ्चनदविश्वविद्यालय प्राज्ञ,विशारद, शास्त्री, डिप्लोमा, ट्रेनिंग, प्रभाकर,आदि समस्तपरीक्षेण, साहित्याचार्य्य, साहित्यार्णवकर्णधार, षट्शास्त्री, विद्यामनीषी प्रभृति बहूपाधिधारिणा, विष्णु, रुद्र, शत, सहस्र, लक्ष, कोटि विविधयाग पवित्रधूमनिर्धौतकायकच्चरेण गौडमहावंशकणकरीरेण-चतुर्दशवर्षावधि भारतगुप्तविभाग क्रूर प्रतिबन्ध परिभुक्तघोरयमयातनेन, डुंगरकालेज बीकानेर हीरालाल-जैन हाईस्कूल पहाड़ीधीरज दिल्ली, हेली हाईस्कूल-नरेला, रामानुज संस्कृतविद्यालय डीडवाना, सिंघा-नियां आर्षविद्यापीठ कानपुर आदि स्थानेषुभूतपूर्वं संस्कृत प्रधानाध्यापकेनजयरामशर्मणा प्रणीतोऽयं कविपरिचय: ।

समाप्तः

असमाप्तश्चायं ग्रंथः
१/११/५० ई०.

वंदेमातरम्

GLOSSARY

॥ प्रथमः सर्गः ॥	CHAPTER I
१. शिलीमुखः। (पुं०)	1. Arrow 2. Bhavra.
२. वियोगी (पुं०)	2. Separatedone 2. Specialist in Meditation.
३. आगमः (पुं०)	3. Advent 2. Tree 3 Scriptures.
४. द्विजः (पुं०)	4. Bird 2. Brahman, Etc.
५. करुणाकरः (पुं०)	5. Kind hearted 2. Kind of tree.
६. विशेषः (पुं०)	6. Specially extra, much 2. Bird and Shes Nag.
७. सुराः (पुं०)	7. Gods 2. Wine.
८. जातिः (स्त्री)	8. Cast 2. Malati.
९. कञ्चुकः (पुं०)	9. Slough 2. Long coat.
१०. भोगः। (पुं०)	10. Cobra's hood 2. Wordly enjoyment.
११. दर्शनम् (नं०)	11. See 2 Philosophy
१२. स्तवकः। (पुं०)	12 He who praises 2. Bunch.
१३. उलुलुः। (पुं०)	13. A Song by Bengal women.
१४. षिङ्गः। (पुं०)	14. Bhavra 2. Profligate person
१५. माधवः। (पुं०)	15. Spring season 2. Shri Krishana.

॥ द्वितीयः सर्गः ॥	CHAPTER 2
१. पलाशी। (पुं०)	1. Tree. 2. Meat eater.
२. सुमनाः। (पुं०) (स्त्री)	2. Malati 2. Noble persons. 3. Gods.
३. कुम्भिनी भुजः।	3. of the Kings. & Mountains

४. सुवर्णः । (पुं॰)	4. Gold 2. Good letter. 3. Good caste
५. भुजङ्गः । (पुं॰)	5. Serpent 2. The wicked.
६. इन्द्र रम्भा वरुणाः । (स्त्री)	6. Three special trees 2. Three gods.
७. महिषीं (स्त्री)	7. Favourite queen 2. She buffalow.
८. शिवा (स्त्री)	8. Parbati 2. She jackal 3. Harkha.
९. मधुपः । (पुं॰)	9. Bhavra, 2. Wine drinker.
१०. उत्कोचः । (पुं॰)	10 Bribe.

॥ तृतीयः सर्गः ॥ CHAPTER 3

१. करीरः (पुं॰)	1. A tree
२. विपल्लवः (पुं॰)	2. Without leaves 2. without-feet, 3. Sorrowful.
३. करः (पुं॰)	3. Tax 2. Hand.
४. पुराण शाखा ।	4. The Puranas and the Vedas
५. वारुणीः	5. Wine 2. West.
६. सरस्वती (स्त्री)	6. Goddess of learning 2. River Saraswati.
७. मानसम् (नं॰)	7. The mind 2. The Mansarovar lake.
८. मत्ती (पुं॰)	8. St. Mathew, Evangelist of Gospel.
९. मत्तीरम् (पुं॰)	9. A desert fruit.

॥ चतुर्थः सर्गः ॥ CHAPTER 4

१. भुवनम् (नं॰)	1. World 2. Water.

२. जीवनम् (नं०)	2. Life 2. Water.
३. भुजङ्ग संसत् (स्त्री)	3. A group of serpents 2. A Society of of the wicked.
४. हरिः । (पुं०)	4. Lion 2. Indra. 3. Vishnu.
५. वलम् (नं०)	5. Prowess 2. A certain demon.
६. जिनः	6. Mahaveer Swami

॥ पञ्चमः सर्गः ॥ CHAPTER 5

१. चापलता (स्त्री)	1. Absence of creepers
२. सुपर्णेन	2. By Garur 2. By one of good leaves.
३. कदम्ब	3. A kind of tree 2. Directions.
४. काष्ठाः	4. Directions
५. हरितः ।	5. Directions
६. आशाः ।	6. Hopes 2. Directions.
७. कीचकः (पुं०)	7. Hollow Bamboo 2. A character in Mahabharat.
८. कर्णः (पुं०)	8. Ear 2. A Mahabharat Character.
९. मुक्तकः (पुं०)	9. The liberated one 2. A kind of tree.
१० अटाट्या (स्त्री)	10. Himless wandering.

॥ षष्ठः सर्गः ॥ CHAPTER 6

१. कलिका (स्त्री)	1. Thought waves 2. bud.
२. निघः (पुं०)	2. Trees.
३. उडुपः (पुं०)	3. Boat 2. Moon.

४. वामताम्	4. To Beauty 2. Crookedne

॥ सप्तमः सर्गः ॥ / CHAPTER 7

१. वर्णभूमा	1. Richness 2. Letter 3. Casts.
२. बहुलोहमयी	2. Mostly made of iron 2. Too thoughty.
३. तमोऽरिः (पुं०)	3. The Sun.
४. विज्जिका	4. An ancient wise women.
५. कुहूः	5. The night 2. The spee of pick.
६. शृङ्गम् (नं०)	6. The horns 2. Pomp a Show.